अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-03, 16-30 सितम्बर, 2015

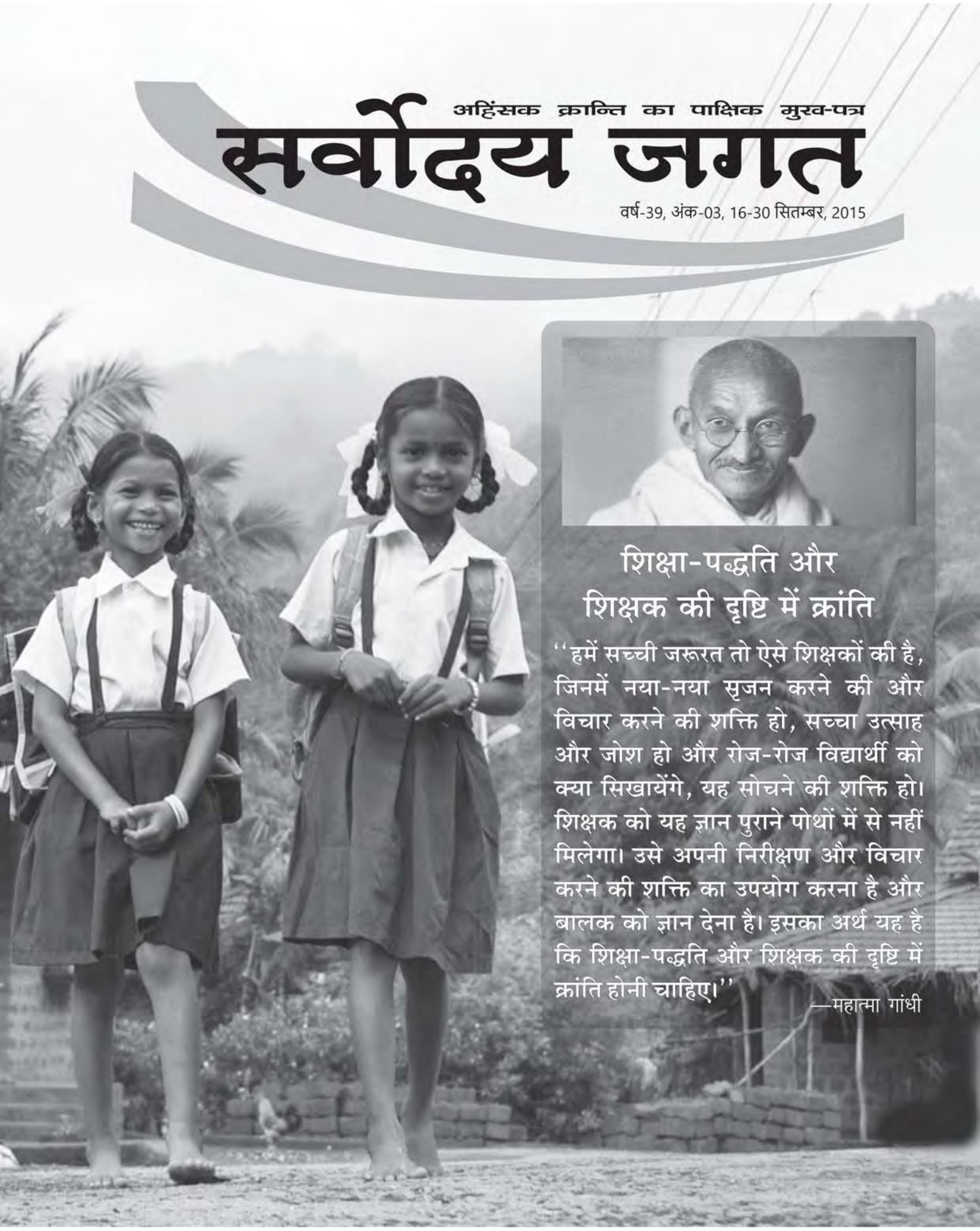

शिक्षा-पद्धति और शिक्षक की दृष्टि में क्रांति

''हमें सच्ची जरूरत तो ऐसे शिक्षकों की है, जिनमें नया-नया सृजन करने की और विचार करने की शक्ति हो, सच्चा उत्साह और जोश हो और रोज-रोज विद्यार्थी को क्या सिखायेंगे, यह सोचने की शक्ति हो। शिक्षक को यह ज्ञान पुराने पोथों में से नहीं मिलेगा। उसे अपनी निरीक्षण और विचार करने की शक्ति का उपयोग करना है और बालक को ज्ञान देना है। इसका अर्थ यह है कि शिक्षा-पद्धति और शिक्षक की दृष्टि में क्रांति होनी चाहिए।''

—महात्मा गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 39, अंक : 03, 16-30 सितंबर, 2015

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क
मूल्य : पांच रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये
खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. संपादकीय : नव-सृजन के शिक्षा... 02
2. सार्वजनिक शिक्षा की ताजपोशी... 03
3. समाजोन्मुख शिक्षा... 05
4. जीवन की किताब क्या कहती... 06
5. क्रांति और पुनर्जन्म... 08
6. कौशल विनाश की ओर... 09
7. रोबोटमय संसार... 10
8. आबादी का बोझ... 11
9. हल सत्याग्रह : राजनीति या... 13
10. खादी को असरकारी बनाने की... 14
11. स्वतंत्रता का मूल्य : सजगता... 16
12. कम्प्यूटर व इंटरनेट से होने वाले... 17
13. और ज्यादा समीचीन हो रहे हैं... 18
14. गतिविधियां एवं समाचार... 19
15. कविता : अतीत के द्वार पर... 20

संपादकीय

नव-सृजन के लिए शिक्षा

भारत में वर्तमान शिक्षा नीति की बुनियाद औपनिवेशिक शासन काल में मैकाले द्वारा रखी गयी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा नीति में बदलाव के लिए कई कमीशन बने। सन् 2009 में अनिवार्य शिक्षा का कानून भी बन गया। इसके बावजूद दो गम्भीर समस्याएं बनी रहीं। पहला तो है समान शिक्षा का अधिकार। सभी वर्गों के बच्चे, बिना भेद-भाव के साथ पढ़ेंगे, साथ खेलेंगे, साथ-साथ गतिविधियों में शामिल होंगे, तभी हम राष्ट्रीय एकता एवं समानता की नींव रख सकेंगे। शिक्षा केवल किताबी ज्ञान देने का माध्यम नहीं है, बल्कि उदात्त राष्ट्रीय मूल्यों की नींव रखने का भी माध्यम है।

दूसरा गम्भीर मसला शिक्षा के बाजारीकरण का है। क्योंकि बाजार का खेल, शिक्षा को उसके सभी उद्देश्यों से विरत कर देगा, और अन्ततः शिक्षा को बाजार की चेरी बना देगा।

एक अन्य बात, मैकाले ने जिस शिक्षा-प्रणाली को खड़ा किया था, उसका उद्देश्य था—पूंजीवादी औपनिवेशिक सत्ता को मजबूत करना। इसलिए यह स्पष्ट होना चाहिए कि जब हम सबको शिक्षा—सबको समान शिक्षा का समर्थन करते हैं तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कहते हैं कि ऐसी शिक्षा मिले, जो पूंजीवादी बाजार एवं पूंजीवादी समाज के विकल्प में नये समाज को बनाने में मदद करे। गांधीजी ने बुनियादी तालीम की बात की थी, क्योंकि समाज के नव-सृजन के केन्द्र में उन्होंने गांव को रखा था। ग्राम स्वराज्य का एक पहलू शिक्षा स्वावलम्बन भी है। यानी, गांव के सभी बच्चों को उद्देश्यपूर्ण शिक्षा देने में गांव स्वावलम्बी बनें। यह शिक्षा बच्चों का चरित्र-निर्माण करे, अनीति को अस्वीकार करने का मनोबल पैदा करे तथा कुछ शरीर-श्रम द्वारा सेवा-कार्य की ओर प्रवृत्त करे, तभी यह सच्ची शिक्षा होगी।

शिक्षा और ग्राम समुदाय के संदर्भ में एक अन्य बात भी ध्यान में रखने की है। सरकार द्वारा संचालित स्कूल उस व्यवस्था के अंग हैं, जिन्हें हम औपचारिक कहते हैं। स्कूल तथा उसका प्रबंधन भी उस राज-व्यवस्था या बाजार व्यवस्था का हिस्सा है, जो आधुनिक वैश्विक समाज के तंत्र हैं। मोटे तौर पर राजव्यवस्था के लक्ष्यों एवं पूंजीवादी समाज के लक्ष्यों के लिए जैसे नागरिकों के निर्माण की आवश्यकता होती है, उसकी आधारशिला इन स्कूलों में रखी जाती है।

दूसरी ओर ग्राम समुदायों का स्वरूप एवं संगठन, उनकी संस्कृति एवं उनके मूल्य इस व्यवस्था से बिलकुल भिन्न रहे हैं। ऐसे में वर्तमान स्कूली शिक्षा ग्राम-समुदायों का जीवन-आधार प्रकृति प्रदत्त स्रोत रहे हैं, जैसे जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि। आज ये समुदाय ऐसे भी शोषण व दोहन के शिकार हैं तथा इनका शोषण व दोहन वही व्यवस्था कर रही है, जो इन स्कूलों का संचालन व पोषण कर रही है।

अतः बुनियादी शिक्षा का काम करने वालों को शिक्षा के तत्त्व में बुनियादी बदलाव लाना होगा। शिक्षा का लक्ष्य यह हो कि लोक-समुदायों के मूल गुण एवं सत्त्व को पहचाने, उसे ग्रहण करे तथा उन मूल गुणों के सत्त्वों के आधार पर समुदायों के नव-सृजन में सहयोग करे। शिक्षा के माध्यम से एक ऐसे सामाजिक पूंजी का भी निर्माण हो, जिससे शोषण व दोहन को अस्वीकार करने की शक्ति उनमें आ सके तथा वैकल्पिक रचना के निर्माण का कौशल भी विकसित हो सके।

बिमल कुमार

शिक्षा

सार्वजनिक शिक्षा की ताजपोशी

❑ चिन्मय मिश्र

''मैं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कीमत करता हूं। परंतु आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मुख्यतः एक सामाजिक प्राणी है। अपने व्यक्तिवाद को सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना सीख कर वह अपने मौजूदा ऊंचे दर्जे पर पहुंचा है। अनियंत्रित व्यक्तिवाद जानवरों का कानून है। हमें व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और सामाजिक संयम के बीच के रास्ते पर चलना होगा।'' **–महात्मा गांधी**

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा, उमेश कुमार सिंह एवं अन्य द्वारा सन् 2013 व 2015 में प्राथमिक शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षकों की भर्ती हेतु जारी त्रुटिपूर्ण शासकीय आदेश के खिलाफ दायर याचिका पर अपने महत्त्वपूर्ण निर्णय में न केवल अपीलकर्ता के वाद को स्वीकार किया वरन अपने न्यायिक निर्णय को एक ऐतिहासिक सामाजिक दस्तावेज में भी बदल दिया। उन्होंने अपने निर्णय में आदेश दिया कि नेता, नौकरशाह व न्यायाधीश, अर्थात सरकारी खजाने से लाभान्वित प्रत्येक व्यक्ति (उत्तर प्रदेश में) अपने बच्चों को उत्तर प्रदेश बोर्ड से संबंधित विद्यालयों में पढ़ायें। जो ऐसा नहीं करते हैं उनकी पदोन्नति व वेतन वृद्धि पर भी रोक लगा दी जाये एवं उस निजी विद्यालय में जितना शिक्षण शुल्क वह देंगे उतना ही उन्हें सरकारी खजाने में जमा करना पड़ेगा। जाहिर है, इस निर्णय से भारतीय अभिजात्य के पेट में जबरदस्त मरोड़ उठी है और वह सनाके में है। गौर करिए कि क्या यह महज संयोग है कि इतने महत्त्वपूर्ण न्यायिक निर्णय (सहमति या असहमति अपनी जगह है) का उल्लेख देश के तकरीबन सभी बहुप्रसारित राष्ट्रीय अंग्रेजी दैनिकों में प्रथम पृष्ठ पर तो क्या अंदर के पन्नों पर कहीं एक कॉलम में भी नहीं हुआ।

बहरहाल न्यायिक निर्णय एक अकाट्य सत्य है और उत्तर प्रदेश सरकार को आगामी छह महीनों में इसका अनुपालन करना है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि इस निर्णय को चुनौती अवश्य मिलेगी और इस पर स्थगन भी आ सकता है। हो सकता है यह मामला भी बाबरी मस्जिद-राम मंदिर विवाद जैसा दशकों तक खिंचता ही जाए। वैसे भी शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह की जानी बूझी ढीलमपोल आजादी के बाद से लगातार चल रही है। आजादी के तुरंत बाद ही शिक्षा में सुधार के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे। पहला शिक्षा आयोग जिसे कोठारी आयोग के नाम से जाना जाता है, ने आज से करीब 50 वर्ष पूर्व (1964-66 तक कार्यकाल में) अपनी रिपोर्ट में कहा था, ''यह शिक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी है कि विभिन्न सामाजिक तबकों और समूहों को इकट्ठा लाये और इस प्रकार एक समतामूलक एवं एकजुट समाज के विकसित होने का प्रोत्साहित करे। लेकिन वर्तमान में ऐसा करने के बजाय शिक्षा स्वयं ही सामाजिक भेदभाव और वर्गों के बीच के फासले को बढ़ा रही है। यह केवल गरीब बच्चों के लिए नहीं वरन् सम्पन्न व सुविधाभोगी समूहों के बच्चों के लिए भी खराब है। अपने बच्चों को अलग-अलग रखकर ये सुविधाभोगी मां-बाप उनको गरीब बच्चों के जीवन के अनुभवों को जानने एवं जिन्दगी की हकीकत के सम्पर्क में आने से रोकते हैं। सामाजिक एकजुटता को कमजोर करने के अलावा वे अपने ही बच्चों की शिक्षा को बीमार और अधकचरी बना देते हैं।''

हम आधी शताब्दी बाद प्रो. कोठारी की बातों की सच्चाई को परख सकते हैं। हम एक ऐसे समाज में परिवर्तित होते जा रहे हैं जिसमें विषमताएं दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही हैं। वैसे जिन 'मान्यवरों' को कोठारी आयोग की रपट समझने में दिक्कत आ रही हो उन्हें प्रसिद्ध सामाजिक नेता डॉ. राममनोहर लोहिया द्वारा सन् 1966 में 'आसान हिन्दी' में लिखी टिप्पणी पढ़ लेनी चाहिए। यह अभिजात्य वर्ग के कान के कीड़े झाड़ने के लिए काफी है। वे लिखते हैं, ''अगर मासिक सीमा (आय की) पटाकाश है तो प्राथमिक शिक्षा का साधारणकरण घटाकश है। (यह) बैंकों के राष्ट्रीयकरण से भी ज्यादा दुष्कर किन्तु ज्यादा असरदार मुद्दा है। 5 से 10 वर्ष अथवा 11 वर्ष के बच्चों को राष्ट्र, समूह, एकात्मकता, समता और मनुष्यता का मजबूत अर्थ मिल सकता है। रोगी, जाति और श्रेणी विभक्त दरिद्र समाज के मर्म चोट पड़ेगी। लेकिन अभिजात वर्ग शायद आखिरी दम तक कोशिश करे कि इस तरह की चोट उसे न उठानी पड़े। पहले तर्क दिया जायेगा कि अगर सभी बच्चे गाली देना और थूकना सीख जायेंगे तो देश कौन चलायेगा। इस तर्क का उत्तर आसान है। जब बड़े लोगों के बच्चे भी थूकने और गाली देने लगेंगे तब अतिशीघ्र सारी प्राथमिक शिक्षा का सुधार होगा।''

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय इसी दिशा में उठा एक कदम है। परंतु इसमें एक गली छूट गयी कि निजी विद्यालय जितनी ही फीस जमा कर वे उन्हें अन्य विद्यालयों में पढ़ा सकते हैं। वैसे अनेक राजनेताओं, व्यापारियों व उद्योगपतियों ने तो अपने बच्चों को यूरोप व अमेरिका में ही पढ़ाना शुरू कर

दिया है। जाहिर है हमारी शिक्षा प्रणाली नये सिरे से वर्गभेद पैदा कर रही है। इस निर्णय से संसद द्वारा सन् 2009 में पारित ''बच्चों का निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार विधेयक-2008'' भी पुनः चर्चा और समीक्षा के दायरे में आयेगा। इसकी नींव में कहीं-न-कहीं वैश्विक वित्त संस्थाओं का दबाव रहा है जो कि कमोवेश शिक्षा का निजीकरण चाहती हैं। भारत में सर्वशिक्षा अभियान का करीब 40 प्रतिशत बजट इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से आता है।

शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकारने को लेकर हो रही बहस में एक सकारात्मक मोड़ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सन् 1993 में दिये गये उन्नीकृष्णन फैसले से आया था। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि अनुच्छेद 45 (राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व के अंतर्गत संविधान लागू होने के 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था करना) को खंड तीन के जीवन के अधिकार वाले अनुच्छेद 21 के साथ जोड़कर पढ़ने की जरूरत है। यह कि ज्ञान देने वाली शिक्षा के बगैर इनसान का जीवन निरर्थक है। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1993 में ही 14 साल तक के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया था। लेकिन सन् 2009 में पारित संविधान संशोधन विधेयक में खंड-3 में अनुच्छेद 21 (क) को सशर्त जोड़ा गया। इसके अनुसार शिक्षा का मौलिक अधिकार ''उस रीति से दिया जायेगा जो राज्य कानूनन निर्धारित करेगा।'' इसके बाद निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण जैसे सरलीकृत समाधान ढूंढ़े गये जो पूरी तरह से मुफ्त शिक्षा का वायदा भी नहीं करते। जाहिर है इसमें समान शिक्षा का तो जिक्र ही नहीं है। आज तो सरकार ही अपने अलग-अलग विशिष्ट विद्यालय (नवोदय विद्यालय) संचालित कर रही है। ऐसे में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय वास्तविक तौर पर समान शिक्षा की दिशा में पहल का रास्ता दिखा सकता है। वैसे भी बिना निजी विद्यालयों को शामिल किये समान शिक्षा की बात सोचना ही बेमानी होगी।

इस बीच पालकों द्वारा अपने बच्चों को विदेश में नौकरी करने भेजने की लालसा ने भी अंग्रेजी भाषी विद्यालयों को अनावश्यक बढ़ावा दे दिया गया। विदेशी भाषा अन्य ज्ञानवर्धक विषयों पर राज करने की स्थिति में आ गयी। इससे वैश्विक वित्त संस्थाओं और भारत के महाकाय गैर-सरकारी संगठनों को नैतिक बल मिला, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीकों से भारत की सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को हथिया लेना चाहते हैं। हमें आंख खोलकर देखना और समझना होगा कि विश्व के सबसे धनी जी-8 देश यथा अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, कनाडा, इटली, फ्रांस, जर्मनी और रूस सभी के यहां सरकारी खजाने के धन से चलने वाली सार्वजनिक विद्यालय प्रणाली विद्यमान है और उसे दिनोंदिन और भी अधिक मजबूत बनाया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि बिना समान व सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के देश का उन्नत हो पाना सम्भव ही नहीं है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय को पुनः साधुवाद जिन्होंने शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय को पुनः चर्चा का विषय बनाया। ❑

सद्‌गुण का दुरुपयोग

मुम्बई में शराब की एक दूकान में एक खादी वाला बैठा-बैठा शराब पी रहा था। मेरे एक मित्र खादी के बड़े खिलाफ थे। कहते थे, *''खादी में क्या रखा है?''* उन्हें तो सबूत भी मिल गया। कहने लगे–*''देखो, यह तुम्हारा खादी वाला शराब पी रहा है।''* मैंने कहा–*''हां, खादी पहने हुए है और शराब पी रहा है, इतना तो मैं मानता ही हूं।''* कहने लगे–*''तब और क्या नहीं मानते? इससे तो हम अच्छे हैं, जो खादी नहीं पहनते। कम-से-कम शराब तो नहीं पीते!''* मैंने कहा–*''शराब नहीं पीते, यह तो अच्छा ही करते हो, लेकिन खादी नहीं पहनते, यह कैसे अच्छा हो गया?''* कहने लगे–*''यह खादी वाला शराब जो पी रहा है!''* मैंने जवाब दिया–*''आपकी दृष्टि क्रांतिकारी की नहीं है। यह खादी वाला शराब नहीं पी रहा है, यह शराबखोर खादी पहनने लगा है। देखने का फर्क है। खादी के कपड़े को जो सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, उससे वह लाभ उठाना चाहता है।''* तो कहने लगे–*''यह खादी का दुरुपयोग करता है।''* मैंने कहा–*''हां, दुनिया में अच्छी चीज का ही दुरुपयोग अधिक होता है, बुरी चीज का नहीं।''* दुर्गुण का भी कभी दुरुपयोग हुआ है? भगवान् के नाम का दुरुपयोग होता है कि शैतान के नाम का? दुनिया में जितनी अच्छी चीजें हैं, जितने प्रगतिकारक और उन्नतिकारक तत्त्व हैं, उन सबका दुरुपयोग होता है। अंग्रेजी में एक वाक्य है कि दुर्गुण को जब सद्‌गुण का गौरव करना होता है, तो दुर्गुण सद्‌गुण का स्वाँग रचता है। दम्भ, ढोंग दुर्गुण द्वारा सद्‌गुण के चरणों में व्यक्त की गयी निष्ठा है। इसलिए जब लोग यह कहते हैं कि यह झूठा सत्याग्रह है, यह दम्भ है, तो मैं उसकी गहरी चर्चा में नहीं जाता। मैं यह देख लेता हूं कि इस युग का यह लक्षण है कि आज सत्याग्रह की नीति समाज में सुप्रतिष्ठित हो गयी है और क्रांति की प्रक्रिया में उसका स्थान अब अविचल हो गया है। आगे आने वाली क्रांति की जो प्रक्रिया होगी, वह सत्याग्रह के अनुरूप होगी। अगर वह सत्याग्रह की ही प्रक्रिया हो, तो सबसे बढ़कर होगी, यह आज के जमाने का संकेत है।

–दादा धर्माधिकारी

शिक्षा

समाजोन्मुख शिक्षा

❑ यदुनाथ थत्ते

पाठशालाओं में जो उत्पादक-श्रम किये जायेंगे–मजदूरी के लिए नहीं किये जायेंगे, समाज-कल्याण को सामने रखकर किये जायेंगे, इसमें शोषण के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहेगी।

एक जमाना था, जब शिक्षा को रोजी का निश्चित साधन माना जाता था। जिस तरह वसंत के बाद वर्षा ऋतु स्वयं आ जाती है, वैसे ही शिक्षा के बाद रोजी स्वयं आ जाती है, ऐसा विश्वास लोगों को होता था, लेकिन आज स्थिति एकदम बदल गयी है। जो देश आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहे हैं वहां शिक्षा के बाद अक्सर बेरोजगारी ही नसीब में बदा होती है। अन्य देशों में जहां काम आदमी की प्रतीक्षा करता है वहां छात्र शिक्षा-संस्थाओं का आश्रय काम के लिए नहीं, काम टालने के लिए करते हैं। कम-से-कम वे ऐसे काम नहीं करना चाहते जहां हाथों में धूल लगना सम्भव हो। हमलोग इस बात से सहमत ही होंगे कि पाठ्यक्रम में उत्पादक श्रम को अवश्य ही स्थान मिलना चाहिए। आश्चर्य इस बात का होता है कि आज दुनियाभर के शिक्षाविद् जो बात कह रहे हैं वह गांधीजी को वर्षों पूर्व क्यों और कैसे सूझी होगी? यह दूसरी बात है कि हमारे शिक्षा-कर्मियों ने उस विचार की खिल्ली उड़ायी और उसको असफल बना दिया। काम करते हुए पढ़ना और पढ़ते हुए काम करना चाहिए, ऐसी सिफारिश भी इन शिक्षाविदों ने की।...

विकसित देशों की लोकसंख्या वृद्धि घटने के कारण वहां की प्राथमिक शालाओं की संख्या भी घट रही है। इसके विपरीत विकासोन्मुख देशों की बढ़ती संख्या में जिनको एक ही कक्षा में एक वर्ष से अधिक रखना पड़ रहा है और जिनको कोई तालीम अभी नहीं मिल रही है, इनकी संख्या बढ़ रही है। इन देशों में हम देख रहे हैं कि शिक्षा के महलों को आज की तरह आबाद रखने में लोगों की दिलचस्पी नहीं है। वे शिक्षा तथा उत्पादक श्रम में मेल बैठाने के इच्छुक हैं। पाठशालाओं में कितना उत्पादन होना चाहिए इसको भी वे तय करना चाहते हैं और मूलभूत औजारों के उपयोग की तालीम भी वे देना चाहते हैं।

पाठशालाओं में जो उत्पादक-श्रम किये जायेंगे—मजदूरी के लिए नहीं किये जायेंगे, समाज-कल्याण को सामने रखकर किये जायेंगे, इसमें शोषण के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहेगी।

शिक्षा और उत्पादक श्रम में मेल बैठाने का परिणाम अच्छा निकलने का दावा किया गया जाता है। इससे शिक्षा का आज का रटन का स्वरूप बदल जाता है और वह अर्थपूर्ण बनती है। चरित्र-निर्माण में उत्पादक-श्रम का परिणाम अच्छा निकलता है, ऐसा लोगों ने बताया। छात्रों को उत्पादक-श्रम स्वीकार होते हैं और इस कारण वे श्रमिक की इज्जत भी करने लगते हैं। आज बौद्धिक और शारीरिक श्रम में जो ऊंच-नीच का विचार है, वह इस कारण हट जाता है। इसके लिए अध्यापक और छात्रों की मानसिकता तो बदलनी ही होगी, लेकिन अभिभावकों को भी अछूता नहीं छोड़ा जा सकता। इसके लिए प्रौढ़ शिक्षा पर बल देना आवश्यक होगा। आज शिक्षा उम्र से जुड़ी है, यह नाता तोड़ना पड़ेगा। किसी भी उम्र में आदमी पढ़ सकता है, ऐसा नया वातावरण बनाना होगा। कुछ समाजवादी देशों में तो यह पाया गया है कि प्रौढ़ों की बगल में छात्र भी उत्पादन का काम करते हैं। मतलब यह कि उत्पादन तथा शिक्षा दोनों आमरण करना है।

एक और पहलू पर भी लोगों ने बल दिया है। व्यक्तिगत जीवन के मूल्य और सामाजिक मूल्यों में आज बहुत अंतर दिखाई देता है। शिक्षा और उत्पादक-श्रम में मेल बैठाने का एक परिणाम यह भी होगा कि यह द्वन्द्व मिट जायेगा। लोकनायक जयप्रकाश हमेशा कहते थे कि मूल्यों का अस्तित्व समाज के संदर्भ में ही है। अकेला आदमी बीरान स्थान पर घोड़े की तरह हिनहिनाता है या गंधर्व की तरह गाता है, यह बेमतलब की बात होगी। मूल्यों को यानी अच्छे-बुरे का विचार समाज के संदर्भ में ही करना होता है। उत्पादक-श्रम व्यक्ति और समाज में एक कड़ी का काम करता है। शिक्षा को समाजाभिमुख बनाने का सबसे कारगर उपाय शिक्षा के साथ उत्पादक-श्रम को जोड़ना है। ❑

भूदान यज्ञ बोर्ड के अध्यक्ष मनोनीत

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) की अनुशंसा पर असम सरकार ने **श्री भीमकांत कोंवर** को **असम भूदान यज्ञ बोर्ड का अध्यक्ष** मनोनीत किया है।

श्री भीमकांत कोंवरजी संस्कृत के विद्वान और असम प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष हैं। आप पूर्व में एच. एस. के. कॉलेज, डिब्रूगढ़ (असम) के उपप्राचार्य पद की जिम्मेवारियों का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया है।

आशा है, श्री कोंवरजी के नेतृत्व में असम भूदान यज्ञ बोर्ड के कार्य में गति आयेगी। —**मारोति गावंडे,** कार्या. मंत्री, ससेसं.

जीवन की किताब क्या कहती है?

❑ जे. कृष्णमूर्ति

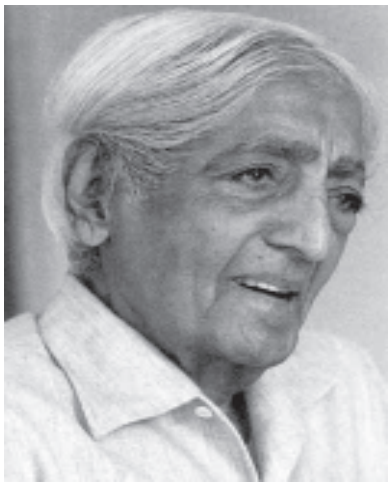

''जब तक आप स्व-केन्द्रित होकर, स्वार्थपूर्वक, अहंकारपूर्वक, व्यक्तिगत दायरे के तहत कर्म कर रहे होते हैं, इस व्यापक जीवन की समग्रता को इस छोटे से 'मैं' में सीमित-संकीर्ण कर देते हैं, तो यह मानकर चलिए कि आप अव्यवस्था ही लाने वाले हैं, क्योंकि यह 'मैं' विचार द्वारा रची-गढ़ी एक बेहद मामूली चीज है।''

मनुष्य जाति की पूरी कहानी आप में है। व्यापक अनुभव, गहराई तक जड़ पकड़े हुए भय, दुश्चिन्ताएं, दुःख, सुख-आसक्ति और युगों-युगों से संचित तमाम मत-विश्वास। आप वह किताब हैं, और उस किताब को पढ़ना एक कला है। उसे किसी प्रकाशक ने नहीं छापा है। वह बेचने के लिए नहीं है। आप उसे कहीं खरीद नहीं सकते। आप किसी विश्लेषक के पास नहीं जा सकते क्योंकि उसकी किताब भी आपके ही जैसी है। न ही किसी वैज्ञानिक के पास जाने का कुछ मतलब है; उसके पास भले ही पदार्थ एवं खगोल विज्ञान के बारे में ढेरों जानकारियां हों, लेकिन मानवता की कहानी वाली उसकी किताब तो वैसी ही है जैसी आपकी।

यदि आप बड़े ध्यान से, धीरज के साथ, झिझक के साथ इस किताब को नहीं पढ़ते, तो आप उस समाज को कभी नहीं बदल पायेंगे जिसमें आप रहते हैं, वह समाज जो भ्रष्ट है, अनैतिक है, जिसमें बेइंतहा गरीबी, अन्याय और ऐसी ही अन्य समस्याएं हैं। वर्तमान संसार के ये मौजूदा हालात किसी भी संजीदा मनुष्य के लिए फिक्र के कारण होंगे—अराजकता, भ्रष्टाचार और युद्ध, जिससे बड़ा कोई अपराध नहीं। इस समाज और उसके ढांचे में आधारभूत परिवर्तन लाने के लिए आपको सक्षम होना होगा यह किताब पढ़ने में जो कि आप खुद हैं। हममें से हरएक ने इस समाज को बनाया है, हमने, हमारे माता-पिता ने, दादा-परदादा ने, सबने। सभी मनुष्यों ने इस समाज को रचा है, और जब तक इस समाज में बदलाव नहीं आता, तब तक इसमें अधिकाधिक विकृति आती रहेगी, युद्ध होते रहेंगे व मानव मन का अधिकाधिक पतन होता जायेगा। यह एक तथ्य है।

तो इस किताब को पढ़ने के लिए, जो कि आप खुद हैं, आपके पास सुनने की कला का होना जरूरी है, तभी आप जान पायेंगे कि किताब कह क्या रही है। उसे सुनने का अर्थ है किताब जो कुछ कह रही है उसकी व्याख्या में न उलझते हुए आपको उसे ठीक वैसे देखना है जैसे आप किसी बादल को देखते हैं। बादल के बारे में आप कुछ नहीं कर सकते हैं, ऐसे ही जैसे हवा में झूमते ताड़-पत्तों और सूर्यास्त की सुंदरता के संदर्भ में आप कुछ नहीं कर सकते। आप न तो उसमें संशोधन कर सकते हैं, न ही उससे वाद-विवाद कर सकते हैं और न उसे बदल सकते हैं; वह तो जो है सो है। तो किताब क्या कह रही है यह जानने के लिए आपमें सुनने की कला का होना बेहद जरूरी है। आप ही वह किताब हैं, आप किताब से यह नहीं कह सकते कि उसे क्या उद्घाटित करना चाहिए : वह तो सब कुछ प्रकट कर देगी। तो सबसे पहली कला जो हमें आनी चाहिए वह है : इस किताब को सुनने की कला।

एक और कला है और वह है अवलोकन की, देखने की कला। जब आप इस किताब को यानी स्वयं को पढ़ते हैं तो किताब और आप अलग-अलग नहीं होते। कृपया इस बात को समझें। ऐसा नहीं है कि एक तो आप हैं, पाठक, और किताब आपसे अलग कोई वस्तु है। बल्कि यह किताब आप ही हैं। तो आप इस किताब का अवलोकन कर रहे हैं, इसको देख रहे हैं, आप किताब को यह नहीं बता रहे हैं कि इसे क्या कहना चाहिए। अभिप्राय यह कि आपको उन तमाम प्रतिक्रियाओं को पढ़ना है, उनका अवलोकन करना है, जिन्हें यह किताब उद्घाटित कर रही है, बिना कुछ बिगाड़े-सँवारे हर पंक्ति को एकदम साफ-साफ देखना है, उन अध्यायों को, पद्यों को, कविताओं को, हर उस बात को जो यह किताब आपको सुना रही है, आपके समक्ष प्रकट कर रही है। तो एक हुई देखने की कला, और एक सुनने की कला।

एक कला और भी है : सीखने की कला। कम्प्यूटर सीख सकते हैं; उन्हें प्रोग्राम किया जा सकता है और जो कुछ उन्हें बताया गया होगा, वे उसे दोहरा देंगे। यदि कोई कम्प्यूटर शतरंज के किसी उस्ताद खिलाड़ी के साथ शतरंज खेले, तो वह उस्ताद उसे दो या तीन या चार बार बेशक हरा दे, लेकिन यह सीखता रहता है कि इसने गलती कहां-कहां की है, तब यह उन्हें सुधार सकता है। इस तरह तजुर्बे के जरिये कम्प्यूटर सीखता जाता है, ताकि कुछ और खेलों के बाद यह उस उस्ताद खिलाड़ी को हरा सके। हमारा मन ऐसे ही काम करता है। हमें पहले अनुभव होता है, फिर हम ज्ञान, जानकारी संचित करते हैं, और उसे स्मृति के तौर पर मस्तिष्क में संग्रहीत कर लेते हैं; और तब स्मृति के रूप में विचार प्रकट होता है, और उससे फिर

कर्मव्यवहार होता है। उस कर्म से हम सीखते हैं, और इसलिए वह सीखना होता है और अधिक जानकारी का संग्रह मात्र। तब हम पुनः आरम्भ करते हैं : अनुभव, ज्ञान, स्मृति, विचार और कर्म। यह चक्र हम सभी के साथ सारा समय चलता रहता है। हर कर्म हमें और जानकारी मुहैया कराता है, और मन अपने अतीत के अनुभव को बदलता, उसमें कुछ फेरबदल करता चलता है और इस तरह यह प्रक्रिया जारी रहती है। वह मन जिसे अपना भान है, जो जागा हुआ है, सारा समय यही किया करता है किसी कम्प्यूटर की मानिन्द, और हम उसी राह चलते जाते हैं।

यही हम लगातार कर रहे हैं, जिसे हम सीखना कहते हैं—अनुभव से सीखना। यही मनुष्य की कहानी रही है : सतत चुनौती, और फिर उस चुनौती को जवाब। वह जवाब उस चुनौती के सामने कारगर साबित हो सकता है, कभी उतना कारगर नहीं भी हो सकता, लेकिन यह मन सीखता है और उस ज्ञान को इकट्ठा करता रहता है, और अगली चुनौती का जवाब फिर वह ज्यादा बेहतर, या कमतर ढंग से दे पाता है। तो यह प्रक्रिया हमारे मन में सारा वक्त चलती रहती है, और इसे ही सीखना कह दिया जाता है। आप कोई भाषा सीखते हैं; यानी कि आप शब्दों के मायने सीखते हैं, वाक्य-विन्यास, व्याकरण, वाक्यों का क्रम, धीरे-धीरे आप एक शब्दावली जमा कर लेते हैं, और अगर आपकी याददाश्त अच्छी है तो आप वह भाषा बोलना शुरू कर देते हैं, जिसे आपने अपना वक्त दिया है। सीखने की यही इनसानी प्रक्रिया है, जिसके तहत हमेशा ज्ञान से ज्ञान की ओर गति होती है। और यह किताब मनुष्यता का समूचा ज्ञान है, मनुष्यता यानी आप। अब या तो आप इस चक्र को सारा वक्त चलाते रहें, या फिर इस चक्र से बाहर निकलने का कोई ढंग मालूम करें। यह बात अभी स्पष्ट हो जायेगी।

मैं यह सब बेहद आसान भाषा में बता रहा हूं, लेकिन शब्द पर मत जाइए, कोई शब्द स्वयं वह वस्तु नहीं होता जिस ओर वह इंगित करता है। शब्द *श्रीलंका* स्वयं यह भूमि नहीं है, यह उसकी सुंदरता, ये ताड़ के दरख्त, ये नदियां, शानदार पेड़, फल और फूल नहीं है। तो कोई शब्द वह वस्तु नहीं हुआ करता। *पति* शब्द वह आदमी नहीं है, वह तो बस एक शब्द है। शब्द हमारे लिए नाप-तोल का एक जरिया है। इसलिए इन सभी वार्ताओं के दौरान कृपया इस बात को ध्यान में रखें कि शब्द कभी भी वह चीज नहीं होता। प्रतीक कभी यथार्थ नहीं होता। तसवीर वह चीज नहीं होती जिसकी वह तसवीर है। अगर यह बात हमारे मन में गहरे घर कर जाए, तब फिर शब्दों का महत्त्व उतना नहीं रह जायेगा। महत्त्व उस वस्तु का है, न कि उस शब्द का।

जैसा कि हमने कहा कि एक देखने की कला होती है, एक सुनने की और एक सीखने की। सीखना यानी वह गति जो अतीत से वर्तमान में आकर उसमें संशोधन करते हुए भविष्य की ओर होती है। इसी पूरे चक्र को ही हम सीखना कहा करते हैं। मनोवैज्ञानिक तौर पर सीखना और साथ ही तकनीकी तौर पर सीखना। इसका अभिप्राय क्या हुआ? यही कि मनुष्य कभी ज्ञात से मुक्त नहीं रहता। हमारा सीखना हमेशा ज्ञात के क्षेत्र में ही रहा करता है, और इसलिए यह मन यांत्रिक बन जाता है। अगर मेरी एक खास आदत है और मैं उस आदत के साथ जी रहा हूं तो मेरा मन यांत्रिक, मशीन जैसा हो जाता है। अगर मेरा किसी चीज में विश्वास है और मैं उसे बार-बार दोहराए चला जाता हूं, तो यह यंत्रवत् हो जाता है। तो हम यह कह रहे हैं कि हम हमेशा ज्ञात के क्षेत्र में ही जिया करते हैं, अतएव हमारा मन शब्दों का एक ताना-बाना बनकर रह गया है—जो असल में है, वह कभी नहीं होता, बस शब्द, शब्द और शब्द ही हुआ करते हैं, और वे ज्ञान के सँकरे, सीमित क्षेत्र में गतिमान् रहते हैं, बदलते रहते हैं, विकल्प देते रहते हैं।

तो सीखने के निहितार्थ पूर्णतः भिन्न हैं। हमने खुलकर इस पर चर्चा की है कि देखना क्या होता है, जीवन की किताब को देखना कैसे है, इन पंक्तियों को कैसे पढ़ना है, सुनना कैसे है किताब को, उसमें कभी बिगाड़-सुधार नहीं करना है, कभी उसकी व्याख्या में नहीं पड़ना है, और न कभी यह चुनना है कि आपको क्या पसंद है क्या नहीं, किसके आप प्रशंसक हैं किसके नहीं। अगर आप वैसा कुछ करते हैं, तो आप किताब को पढ़ ही नहीं रहे। हम यह भी कह रहे हैं कि हम सब ज्ञात के सीमित क्षेत्र में ही जिया करते हैं। यह हमारी सतत आदत बन चुकी है; इसलिए हमारे मन—अगर हम अपने मन को जाँचते-परखते हों—दोहराव-भरे हैं, किसी-न-किसी चीज के आदी हो गये हैं, अभ्यस्त बन चुके हैं। आप ईश्वर में विश्वास करते हैं, और आप तमाम उम्र ईश्वर में विश्वास किये जाते हैं। अगर कोई आपसे यह कहे कि ईश्वर तो शायद है ही नहीं, तो आप उसे धर्महीन करार दे देते हैं। तो आप आदत में फँसे हुए हैं। अब, हमारा कहना है कि यह तो सीखना नहीं हुआ। सीखना तो कुछ अलग ही बात है : सीखने का तात्पर्य है ज्ञान की, जानकारी की सीमाओं की तहकीकात, उस जानकारी में अटक न जाना।

तो देखने की कला है, सुनने की कला है और सीखने की कला है, जिसका मतलब हुआ उसी-उसी ढर्रे में कदापि न फँसे रहना, और न ही कोई और ढर्रा ईजाद करना। हर तरह के प्रारूपों, आदर्शों, मूल्यों को निरंतर ध्वस्त करते रहने का अर्थ यह नहीं है कि आप बिना किसी रोक-टोक के जीने लग पड़ें; इसका मतलब यह कतई नहीं है। बल्कि इसमें निहित है मन की इस प्रारूप-संरचना के प्रति निरंतर जागरूकता, और इसका विध्वंस, ताकि मन लगातार जाग्रत रहे, चौकन्ना रहे। अब सुनने, देखने और सीखने की इन तीन दक्षताओं के साथ, आइए हम मिलकर जीवन की किताब पढ़ें। आप इस किताब को मेरे साथ पढ़ रहे हैं। मैं *आपकी* किताब नहीं पढ़ रहा हूं, हम मनुष्यता की किताब पढ़ रहे हैं जो है आप, वक्ता और शेष मानवजाति।

क्रमशः अगले अंक में...

क्रांति-विमर्श

क्रांति और पुनर्जन्म

❑ दादा धर्माधिकारी

हर सिद्धांत का, हर तत्त्व का विचार मैं सामाजिक मूल्य के नाते करता हूं और समाज-परिवर्तन में हम जो क्रांति उपस्थित करना चाहते हैं, उस क्रांति में उसका कितना उपयोग है, इस दृष्टि से विचार करता हूं।

अब जिस क्रांति को हम उपस्थित करना चाहते हैं, उसके साथ इस विचार का क्या अनुबंध है? एक भाई ने सवाल किया था कि ''तुम मार्क्सवाद की बात करते हो, तो क्या यह नहीं मानते कि आज की परिस्थिति, आज की हमारी विषमता मनुष्य की आर्थिक परिस्थिति का, अर्थ-रचना का परिणाम है?'' मैं मानता हूं। परिणाम अर्थ-रचना का है, मनुष्यों की अर्थ-रचना का है, लेकिन सिर्फ परिस्थिति का परिणाम नहीं है। इसमें मनुष्यों का अपना कर्तृत्व भी कुछ है। इतनी बात उसमें और जोड़ देना चाहता हूं। यह केवल ऐतिहासिक नियति नहीं है। ऐतिहासिक नियति में मनुष्य के पुरुषार्थ का भी कुछ हिस्सा रहता है। सवाल यह है कि क्या केवल ऐतिहासिक नियतिवाद सही है? समाज की जो प्रगति होती है, समाज में जो परिवर्तन होता है, वह क्या केवल प्राकृतिक नियमों के अनुसार होता है? जैसे खेती है। युधिष्ठिर से पूछा था कि ''तेरी खेती क्या सिर्फ बारिश पर निर्भर है? जब बारिश आयेगी तब खेती होगी, जब बारिश का मौसम होगा, तभी खेती होगी?'' इसका मतलब यह था कि बारिश पड़ना या न पड़ना किसान के हाथ की बात न थी। बारिश जब होगी, तब उसकी खेती हो सकेगी; जब बारिश नहीं होगी, तब खेती नहीं हो सकेगी। प्राकृतिक नियमों का एक विशिष्ट परिस्थिति में संयोग होगा, तब तो हमारी क्रांति हो सकेगी। उन प्राकृतिक नियमों का संयोग नहीं होगा, तो ऐतिहासिक घटना भी नहीं घट सकेगी। क्या हम इतना ही मानें या इससे अधिक कुछ मानें?

प्रेरणा का प्रश्न

प्रेरणा का प्रश्न लीजिए। सवाल है कि सबका स्वार्थ विलीन हो जायेगा, तो क्या 'प्रेरणा' समाप्त नहीं हो जायेगी? 'प्रेरणा' का अर्थ है–काम करने की प्रेरणा। प्रेरणा की समस्या आज तक हम लोगों को तंग कर रही है। सारे क्रांतिकारियों को, सारी राज्य-संस्थाओं को, सारी सामाजिक संस्थाओं को, यह हमेशा से तंग करती आ रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि पूंजीवाद ने हमारे मन में यह भ्रम उत्पन्न कर दिया है कि बगैर फायदे के मनुष्य कोई काम कर ही नहीं सकता। विनोबा का एक प्रसिद्ध लेख है– 'फायदा क्या है?' किसी ने पूछा, ''इससे क्या फायदा? उससे क्या फायदा?'' तो विनोबा ने कहा, ''एक सवाल अंतिम पूछ लें कि फायदे से भी क्या फायदा है? यह आखिरी सवाल तू नहीं पूछता है!''

यह सवाल सिर्फ आपके-मेरे सामने नहीं है। वैज्ञानिक समाजवाद के सामने भी यह सवाल आया। उसके प्रवक्ताओं ने लिखा कि जिस तरह से जड़ प्रकृति के नियम होते हैं, उसी तरह से मानवी प्रकृति के नियम होते हैं। प्रकृति में हम जो सिद्धांत पाते हैं, जिस तरह की रचना पाते हैं, उसी तरह से मानवीय समाज का भी विकास होता है, उसमें परिवर्तन होता है।

सवाल यह उठता है कि तब फिर मनुष्य के करने के लिए कुछ रह जाता है या नहीं? जिसे आप क्रांतिकारी पक्ष कहते हैं, उसकी कोई भूमिका है या नहीं? यह सवाल उसमें से पैदा होता है। मार्क्स, ऐंगल्स को कहना पड़ा, ''क्रांतिकारी पक्ष वह है, जो इस संयोग को, प्राकृतिक नियमों के संयोग को, देख सकता है और ऐतिहासिक आवश्यकता से फायदा उठा सकता है।'' यहां पर पुरुष का कर्तृत्व आ जाता है।

मैंने इसे पुनर्जन्म के साथ कैसे जोड़ा? पुनर्जन्मवादी पहले कहता था, ''जैसी नियति होगी, वैसा काम हमसे होगा। भगवान जिस तरह से हमसे करायेगा, उस तरह से हम कर लेंगे।'' तो फिर सवाल यह होता है कि ''कराने वाला भी भगवान, करने वाला भी भगवान, तो बुरे कामों की सजा भी भगवान को ही मिलनी चाहिए।'' कुछ ईसाई ईमानदार निकले। उन्होंने कहा कि ''हां, हमारी सजा तो ईसा ने भुगत ली, अब हमको भुगतने की आवश्यकता नहीं रह गयी है।'' तब विवेकी मनुष्य ने कहा कि ''यह तो मेरे ईमान के खिलाफ है। मेरी प्रतिष्ठा के खिलाफ है। मैं बुरा काम करूं और उसकी सजा कोई दूसरा भुगते, यह बात मेरी इज्जत के, मेरी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल मालूम होती है। मैं अपने लिए किसी दूसरे को सजा नहीं भुगतने दूंगा।'' यह जो कर्म-विपाक का, पुनर्जन्म का सिद्धांत है, वह सिद्धांत मनुष्य को भाग्यवादियों से और नियतिवादियों से ऊपर उठा देता है। पुरुष को वह पुरुषार्थ के लिए प्रेरित करता है। हम जिस क्रांति का विचार कर रहे हैं और जिन सामाजिक मूल्यों का विचार कर रहे हैं, उन सामाजिक मूल्यों की स्थापना में पुरुषार्थ के लिए अवसर है। पिछले समाज के पाप इस समाज को भुगतने पड़ते हैं। सामुदायिक पाप का मतलब है, सामूहिक दुष्कर्म। इससे अधिक कुछ न समझिए। पूंजीवादी समाज में जितने दोष हैं, उन दोषों के परिणाम हम सबको भुगतने पड़ते हैं। इसमें किसी का व्यक्तिगत दोष और व्यक्तिगत पाप नहीं है। जो गरीब है उसने पिछले जन्म में पाप किया होगा, यह पुनर्जन्मवादी कहेगा। पर मैं सामाजिक सिद्धांत का निरूपण आपके सामने कर रहा हूं। उसके अनुसार मैं यह कहूंगा कि पिछले समाज में जो दोष थे, उन दोषों का परिणाम आज के समाज के व्यक्तियों को भुगतना पड़ रहा है। इसलिए जो क्रांतिकारी पक्ष होगा, उसे उन कारणों का, जिन कारणों का यह परिणाम है, अध्ययन करना होगा। ❑

पूंजीवादी व्यवस्था के खेल

कौशल विनाश की ओर बढ़ते कदम?

❑ संजीव सिंह ठाकुर

एक ओर जहां सरकार 7.5 प्रतिशत विकास दर बताकर विदेशों में भारत को एक उभरती अर्थव्यवस्था के रूप में पेश कर रही है, वहीं देश के आर्थिक विकास की रीढ़ माने जाने वाले नामी उद्योगों में कार्यरत शिक्षित कर्मियों की ऐसी बदहाली के क्या संकेत मानने चाहिए?

कांग्रेस की श्रम-विरोधी व कॉरपोरेट-परस्त नीतियों से त्रस्त जनता को मोदी सरकार के 'मेक इन इंडिया' और 'कौशल विकास' के नारे से बहुत उम्मीद जगी थी परंतु आशा की यह किरण धुंधली पड़ने लगी है। उद्योगों के निराशाजनक व्यवहार को साबित करते हुए देश की दूसरे नंबर की ट्रैक्टर बनाने वाली कंपनी ने अपने संयन्त्रों से 5 प्रतिशत कर्मचारियों की छटनी कर दी है। गनीमत यह रही कि एक प्रतिष्ठित दक्षिण भारतीय महिला की छत्रछाया में चलने वाले इस औद्योगिक समूह से निकाले जाने वाले कर्मियों के प्रति संवेदना दिखाते हुए प्रबंधन ने उन्हें पहले से ही सूचना देने के साथ-साथ न केवल तीन माह का ग्रॉस वेतन दिया बल्कि छंटनीग्रस्त कर्मियों के लिए एक सुप्रसिद्ध जॉब कन्सलटेंट की सेवाएं दिलवाकर उन्हें दूसरी कंपनियों में नौकरी की भी कोशिश की।

वहीं दूसरी ओर दिल्ली आधारित ऑटोमोटिव कलपुर्जे बनाने व लगभग 16990 करोड़ टर्नओवर एवं हजारों कर्मचारियों की मदद से चलने वाली एक नामी कंपनी अपने प्रमुख संयन्त्रों से 20 प्रतिशत स्थाई व 10 प्रतिशत अस्थाई कर्मियों को बाहर करने का लक्ष्य पूरा करने के करीब है। कंपनी के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के हरियाणा, राजस्थान सहित पूरे देश स्थित बहुत से संयन्त्रों से अभियन्ताओं, प्रबंधकों व अन्य कर्मियों को सड़क पर खड़ा कर दिया गया है। इसी कंपनी में 7 वर्ष से कार्यरत व अपने काम में पूर्णतया दक्ष हरियाणा के एक इंजीनियर जिनको एक दिन दिल्ली स्थित कार्यालय में बुलाकर त्याग-पत्र लिया गया। वे कहते हैं सरकार अकुशल नौजवानों को कुशलता का प्रशिक्षण देने के लिए (स्किल डेवलपमेंट) कौशल विकास के तहत करोड़ों रुपये खर्च करके रोजगार दिलाने की बात करती है परंतु जो इंजीनियर, कामगार पहले से ही अपने खर्चे पर डिग्री, डिप्लोमा लेकर कुशलता प्राप्त कर देश के निर्माण में लगे हुए हैं अगर उन्हें इस तरीके से बाहर किया जा रहा है, तो सरकार द्वारा नये युवकों को कुशल बनाने के 'कौशल विकास' के नारे पर कौन विश्वास करेगा?

नयी दिल्ली की जामिया मीलिया इस्लामिया से इंजीनियरिंग में स्नातक की डिग्री लेकर 15 वर्षों से इसी कंपनी में कार्यरत एक दूसरे शख्स के मुताबिक उदारीकरण व वैश्वीकरण की नीतियों के चलते विकास व तकनीक के गुब्बारे ने मानवीय मूल्यों को धराशायी कर दिया। कभी अच्छी कंपनियों में कार्यरत कर्मियों के 10 या 15 साल का कार्यकाल पूरा होने पर चेयरमैन अपने हाथों से 'लम्बी अवधि पुरस्कार' देता था। आज मुझे 15 वर्षों की सेवा के बदले पहले से ही लिखित त्याग-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए 15 मिनट का भी समय नहीं दिया गया। क्या भारतीय संस्कृति का दम भरने वाली सरकार की छत्रछाया में कॉरपोरेट को 'यूज एण्ड थ्रो' (इस्तेमाल करो व फेंको) जैसी पश्चिमी अवधारणा को अपनाने की खुली छूट मिल चुकी है?

क्या विगत 20 वर्षों में मात्र कुछ करोड़ से लगभग 16990 करोड़ की टर्नओवर पर पहुंची इस कम्पनी को मोदी सरकार की असहयोग की नीतियों के चलते ऐसा कदम उठाना पड़ा या कांग्रेस के शासन में ऐसी कम्पनियां गलत ढंग से विकसित हुईं, जिसे वर्तमान सरकार की दूरगामी व खराब कम्पनियों पर लगाम कसने की नीति के परिणामस्वरूप यह सब हुआ? या इसका कारण केवल आर्थिक मंदी है? यह बहस का विषय हो सकता है।

एक प्रमुख आर्थिक अखबार के मार्च 2015 के एक अंक के अनुसार इस कम्पनी द्वारा जर्मनी की एक कम्पनी को 175 मिलियन यूरो (लगभग 1200 करोड़ रुपये) में खरीदने की योजना थी। भारतीय मूल की इस कम्पनी के वैश्विक मुखिया जो कि एक विदेशी हैं, ने इस अधिग्रहण की पुष्टि समूह की वेबसाईट पर 22 मई को जारी प्रेस रिलीज में की; यद्यपि इसमें अधिग्रहण की राशि का जिक्र नहीं किया गया। तो क्या कम्पनी भारतीय संयन्त्रों को आंशिक रूप में ही चलाकर विदेश में पैसा लगा रही है? अर्थात कम्पनी 'मेक इन इंडिया' की अपेक्षा 'मेक इन जर्मनी' के नारे में ज्यादा विश्वास करती है?

सड़क पर आ चुके कुशल व शिक्षित कर्मचारी क्या इसे अच्छे दिनों का आगमन मान रहे हैं। कुछेक के अनुसार टेलीविजन चैनल व मीडिया कुछ भी कहें परंतु उनके 15-20 वर्ष के कैरियर में शायद ये सबसे बुरे दिन हैं।

एक ओर जहां सरकार 7.5 प्रतिशत विकास दर बताकर विदेशों में भारत को एक उभरती अर्थव्यवस्था के रूप में पेश कर रही है, वहीं देश के आर्थिक विकास की रीढ़ माने जाने वाले नामी उद्योगों में कार्यरत शिक्षित कर्मियों की ऐसी बदहाली के क्या संकेत मानने चाहिए?

यह कटु सत्य है कि वर्तमान व्यवस्था व अधिकांश मीडिया कॉरपोरेट व व्यवस्था-पोषक वर्ग के पक्ष में होने के कारण ऐसी घटनाएं आमजन तक कम ही पहुंचती हैं। परंतु अगर यही क्रम छुपते-छुपाते भी चलता रहा तो इसका परिणाम अंततः उद्योगपतियों, मानव संसाधन, सत्ता व देश किसी के भी हित में नहीं होगा। *(पीएनएन)* ❑

ज्ञान-विज्ञान

रोबोटमय संसार

❑ श्रीमती सुमन शर्मा

कुछ समय पहले रजनीकांत की एक फिल्म आयी थी 'रोबोट'। उसमें 'चिट्टा' नाम का एक रोबोट बेकाबू हो गया था और लोगों पर हमले करके उन्हें मार डालता था। फिल्म में तो यह कल्पना ही थी लेकिन अब हकीकत में भी यह हो गया है।

जर्मनी में फोक्सवैगन कार प्रोडेक्शन के प्लाण्ट में एक ठेकेदार (कर्मचारी) रोबोट में दूसरे काम के लिए प्रोग्राम सेट कर रहा था किन्तु रोबोट का मन मचल गया और उसने ठेकेदार को पकड़ लिया और उसे इधर-उधर पटकने के बाद मेटल प्लेट से कुचल कर मार दिया। यह रोबोट ऑटो पार्ट्स पकड़कर जोड़ता था। अब इसमें रोबोट की तो कोई गलती थी नहीं। उसने ठेकेदार को ही ऑटो पार्ट समझकर जोड़ना और कसना शुरू कर दिया, ठेकेदार की जान चली गयी, अतः वह क्या कर सकता था? इरादा उसका गलत नहीं था।

यह पहली घटना नहीं है। इससे पहले 1981 में जापानी कावाशाकी फैक्टरी में एक रोबोट ने अपने हाथ से एक मजदूर को कुचलकर मार दिया था।

यह तो वही बात हुई कि 'मेड़ खुद खेत खाने लगे'। जिसको अपनी सुविधा के लिए बनाया उसको शक्ति दी, उसने ही पलटवार करना शुरू कर दिया। इस समाचार से अपने एक पुराने 'भस्मासुर' की याद आ गयी। भस्मासुर ने तपस्या करके भोले बाबा शंकरजी को प्रसन्न करके वरदान मांग लिया कि वह (भस्मासुर) जिसके भी सिर पर हाथ रख दे वह भस्म हो जायेगा। शिवजी के 'तथास्तु' कहते ही वह चल पड़ा, वरदान की सत्यता जानने के लिए शिवजी के सिर पर हाथ रखने। अब तो भोले बाबा चक्कर में पड़ गये और विष्णुजी की शरण में गये। विष्णुजी ने अपने मोहिनी रूप और वाग्जाल में ऐसा फंसाया कि भस्मासुर अपने ही सिर पर हाथ रखने को मजबूर हुआ और परिणामतः भस्म हो गया।

ये सब रोबोट, संयन्त्र, विशालकाय मशीनें, छोटे-छोटे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण सब आधुनिक भस्मासुर हैं, जिन्हें निर्माण, ईजाद किया मानव ने अपनी सुविधा के लिए किन्तु धीरे-धीरे यह सब कुछ लील जायेंगे।

इस घटना के लिए भी इंजीनियर रोबोट में खराबी नहीं बता रहे हैं बल्कि ठेकेदार (कर्मचारी) की गलती बता रहे हैं। स्वाभाविक है अपनी रचना को कोई रचनाकार खराब नहीं बता सकता है। सबके तर्क-वितर्क चल रहे हैं।

आधुनिक सुख-सुविधाओं, जीवन को सरल तथा तीव्रगामी बनाने के साधन प्रारम्भ में बहुत अच्छे व लुभावने लगते हैं किन्तु धीरे-धीरे और बाद में इनका प्रभाव पता चलता है। बिजली प्राप्त करने के परमाणु संयन्त्र बिजली देते रहे, बहुत अच्छे थे किन्तु जब 2011 में जापान में अपना रौद्र रूप दिखाया तो वास्तविकता समझ में आयी। भोपाल गैस त्रासदी को वहां के लोग भूले नहीं हैं और उसका खामियाजा अभी तक भुगत रहे हैं।

सबके हाथों में सुशोभित होने वाला छोटा-सा आधुनिक उपकरण 'मोबाइल' लोगों की शान बना हुआ है, जिसके बिना जीवन अधूरा है लेकिन यह विकिरण का खजाना है। विकिरण मोबाइल सेट व मोबाइल टॉवर दोनों से ही होता है। मोबाइल विकिरण से प्रजनन क्षमता में कमी, कैंसर, ब्रेन ट्यूमर, गर्भपात की आशंका भी हो सकती है। मोबाइल के अधिक प्रयोग से कोशिकाओं में तनाव उत्पन्न हो जाता है। यह तनाव जहरीले पराक्साइड और स्वतंत्र कणों के विकसित होने से होता है। मोबाइल टॉवर से निकला विकिरण आसपास के वातावरण में फैल जाता है। इन विकिरण की तरंगों से पक्षियों पर प्रभाव पड़ता है। पहाड़ों पर शहद बनाने वाली मधुमक्खियां अपना रास्ता भटक जाती हैं और मर जाती हैं। शहरों में सुबह-सुबह चहचहाने वाली गौरेया विकिरण के प्रभाव से समाप्त होती जा रही हैं।

वर्षों से प्रयोग हो रहे फ्रिज, एसी सभी वातावरण को प्रदूषित करने में लगे हुए हैं, इनसे निकली गैसें ओजोन परत में छेद कर रही हैं, जिसके कारण परा बैंगनी किरणें पृथ्वी पर आकर अन्य रोगों के साथ-साथ चर्मरोग भी पैदा कर रही हैं। एसी घर का कमरा ठण्डा करता है लेकिन बाहर गर्म हवा फेंकता है, जिसके कारण बाहर का तापमान बढ़ता जाता है।

स्थिति यह है कि विकसित देशों ने विकासशील देशों को और विशेषकर भारत को कूड़ादान और यहां के लोगों को गिनी पिग समझ रखा है। यदि किसी दवाई के परीक्षण या अन्य किसी परीक्षण में लोग मरते हैं तो कोई नुकसान नहीं है क्योंकि कहना है किसी बड़े उद्देश्य के लिए कुछ हानि होती है, तो उसे हानि नहीं समझना चाहिए। इसी तरह अपने देश का ई-कचरा या अनुपयोगी परमाणु संयन्त्र अहसान के साथ भारत में डम्प करना चाहते हैं। मोबाइल में भी कम एसएआर (स्पैसिफिक एब्जार्पशन रेशियो) संख्या वाला मोबाइल जिसमें विकिरण का कम खतरा रहता है अमरीका, रूस, इटली और पोलेण्ड जैसे देशों में प्रयोग किये जाते हैं, जिससे उनके शरीर पर विकिरण का प्रभाव न पड़े किन्तु भारत के लिए ऐसे मोबाइल नहीं हैं। जीवन को और आसान बनाने के लिए रोबोट का निर्माण किया जा रहा है। अभी यह रोबोट बड़ी फैक्टरियों में और बड़े काम करने के लिए बन रहे हैं लेकिन एक समय वह भी आयेगा जब हर घर में इनसान के स्थान पर रोबोट ही काम करते नजर आयेंगे।

प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी स्टीफन हॉकिंग सहित 150 वैज्ञानिकों ने रोबोट (अप्राकृतिक बुद्धि वाले निर्माण) के खतरों से आगाह→

मत-सम्मत

आबादी का बोझ

❑ अरुण तिवारी

''पहली बात ध्यान रखें कि जीवन एक अवकाश चाहता है। जंगल में जानवर मुक्त है; मीलों के दायरे में घूमता है। अगर 50 बंदरों को एक कमरे में बंद कर दें, तो उनका पागल होना शुरू हो जायेगा। प्रत्येक बंदर को एक लिविंग स्पेस चाहिए।... गौर कीजिए कि बढ़ती भीड़, प्रत्येक मनुष्य पर चारों ओर से एक अनजाना दबाव डाल रही है। भले ही हम इन दबावों को देख न पायें। अगर यह भीड़ बढ़ती गयी, तो मनुष्य के विक्षिप्त होने का डर है।''

आबादी का असंतुलित और अधिक घनत्व सिर्फ गरीबी, बेरोजगारी और मारामारी ही नहीं लाता; यह लोगों को विक्षिप्त भी बना सकता है। ओशो चिन्तित थे कि भोजन तो जुटाया जा सकेगा, लेकिन भीड़ बढ़ने के साथ आदमी की आत्मा कहीं खो तो नहीं जायेगी? इस डर के पीछे ओशो का तर्क था—''पहली बात ध्यान रखें कि जीवन एक अवकाश चाहता है। जंगल में जानवर मुक्त है; मीलों के दायरे में घूमता है। अगर 50 बंदरों को एक कमरे में बंद कर दें, तो उनका पागल होना शुरू हो जायेगा। प्रत्येक बंदर को एक लिविंग स्पेस चाहिए।... गौर कीजिए कि बढ़ती भीड़, प्रत्येक मनुष्य पर चारों ओर से एक अनजाना दबाव डाल रही है। भले ही हम इन दबावों को देख न पायें। अगर यह भीड़ बढ़ती गयी, तो मनुष्य के विक्षिप्त होने का डर है।''

विक्षिप्त होते हम

ओशो का यह निष्कर्ष आज सच होता दिखाई दे रहा है। अपने चारों तरफ निगाह डालिए। अवसाद बढ़ रहा है। हम बात-बात पर गुस्सा होने लगे हैं; इतना गुस्सा कि मामूली-सी टक्कर होने पर ड्राईवर की जान लेने लगे हैं। जरा-सी असफलता पर आत्महत्या के मामले सामने आने लगे हैं। परिवार टूट रहे हैं। एक-दूसरे की देखभाल का भाव भूल रहे हैं। क्या ये सभी विक्षिप्त होने के ही शुरुआती लक्षण नहीं हैं? जनसंख्या वितरण में असंतुलन कुछ ऐसा है कि हमारे शहर कचराघर में तब्दील हो रहे हैं और भारतीयों गांवों से सतत पलायन का दौर शुरू हो चुका है। प्राकृतिक रूप से बेहतर गांवों को छोड़कर कम जगह, कम शुद्ध भोजन, कम शुद्ध पानी वाले शहरों की ओर जाना विवशता है या विक्षिप्तता? सोचना चाहिए।

विक्षिप्त होते हवा-पानी

क्या 'लिविंग स्पेस' का घटना और दबाव का बढ़ना हमारे प्राकृतिक संसाधनों को भी विक्षिप्त बना रहा है? मेरे ख्याल से इस प्रश्न का उत्तर भी हां ही है। क्या ग्लेशियरों के पिघलने की बढ़ती गति के पीछे मानव दबाव एक कारण नहीं है? क्या बढ़ती आबादी के लिए, बिजली और पानी की बढ़ती जरूरतों के लिए क्या हम नदियों पर दबाव नहीं बना रहे हैं? क्या इस दबाव के कारण नदियों के बौखलाने अथवा पगलाने के उदाहरणों से भारत अछूता है? क्या कोसी, गंगा, चेनाब, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों के बौखलाने का एक कारण बढ़ती जन-जरूरत की पूर्ति के लिए इन पर बनते बांध नहीं हैं? क्या यह सच नहीं है कि बढ़ती जन-जरूरत की पूर्ति के लिए ही गुड़गांव, नोएडा और ग्रेटर नोएडा में भूजल का दोहन बढ़ा? इसी खातिर झीलों के लिए प्रसिद्ध बंगलुरु की झीलों के 'लिविंग स्पेस' को कम कर दिया; उन्हें सिकोड़ दिया। कई का तो अस्तित्व ही मिटा दिया। जरूरतें बढ़ीं; भोग बढ़ा, तो हमने जंगल काट डाले; नीलगायों के ठिकाने पर खुद कब्जा जमा लिया—क्या यह सच नहीं? जरूरत और भोग की पूर्ति के लिए हम इतने स्वार्थी हो गये कि हमने हमें जिन्दा रखने वाली ऑक्सीजन का 'लिविंग स्पेस' छीन लिया। मकान इतने ऊंचे कर लिये कि गली की मिट्टी को जिन्दा रहने के लिए जरूरी धूप का अभाव हो गया।

नतीजा साफ है। प्रकृति के जीव, वनस्पति सब विक्षिप्त होने के रास्ते पर हैं। आपने पहले कभी गाय को मानव-मल खाते नहीं देखा होगा? अब यह दृश्य दुर्लभ नहीं। यह विक्षिप्तता के लक्षण नहीं, तो और क्या है? सब्जी, फल अपना स्वाद छोड़ दें या धनिया की पत्ती में मसलने पर भी गंध न आये, यह सब क्या है? यह भी एक तरह से दबाव के कारण वनस्पति जगत का अपने गुणों को छोड़ देना है। यही विक्षिप्तता है। मानव का मानवता छोड़कर, स्वार्थवश दानवी कृत्यों में जुट जाने को विक्षिप्तता नहीं तो और क्या कहा जायेगा?

जाहिर है कि अतिभोग की प्रवृत्ति के अलावा, जनसंख्या का दबाव भी इस विक्षिप्तता का एक मुख्य कारण है। यह भी स्पष्ट है कि इस विक्षिप्तता से यदि स्थाई रूप से बचना है, तो जनसंख्या नियंत्रित करनी ही होगी। चाहे पानी स्वस्थ चाहिए हो या परिस्थिति, परिवार नियोजित करना ही होगा। सामाजिक अपराध घटाने हो या फिर आपसी विद्वेष, आबादी की संख्या और वितरण ठीक किये बगैर यह हो नहीं सकता। आर्थिक विकास

→करते हुए एक खुला पत्र लिखा है। हॉकिंग ने चेताया था कि इससे धरती से जीवन के खत्म होने की प्रक्रिया शुरू होगी। पुरातत्त्ववेत्ता बताते हैं कि पहले मनुष्य के पूँछ होती थी और वे विशालकाय होते थे लेकिन धीरे-धीरे जब प्रकृति को पूँछ अनुपयोगी लगी तब वह समाप्त हो गयी, विशाल काया छोटी हो गयी। डायनासोर जैसे प्राणी और अब भी कितनी तरह के पशु-पक्षी, कीट-पतंगों की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं तो फिर मानव जाति के मिट जाने का खतरा हो ही जायेगा क्योंकि जब सारे काम रोबोट ही करेगा तो प्रकृति को मानव की आवश्यकता ही नहीं रहेगी और वैसे भी जब जंगल, जमीन, पहाड़ और जल समाप्त होने ही वाले हैं तो मानव को भी नष्ट होना ही है। इनसान अपने धीमे जैविक विकास के चलते उनका सामना नहीं कर सकेगा और वे हमसे आगे निकल जायेंगे। *(पीएनएन)* ❑

के मोर्चे पर आगे बढ़ना हो अथवा हर चेहरे की मुस्कान के मोर्चे पर, प्रजनन दर को कम करना अन्य उपायों में से एक जरूरी उपाय है।

एक सोच यह भी

यह एक नजरिया है, किन्तु दुनिया दो वर्गों में बंटी है—अमीर और गरीब। प्रसिद्ध साम्यवादी विचारक कार्ल मार्क्स की मान्यता रही है कि अमीर, उत्पादन करने योग्य साधन के स्वामी होते हैं। अमीर, धन संग्रह पर बल देते हैं। जवाब में गरीब, श्रम संचय पर बल देता है; क्योंकि मात्र श्रम ही एक ऐसी सम्पत्ति होती है, जिसके भरोसे कोई गरीब अपने जीवन की तस्वीर गढ़ता है। अतः श्रम संचय के लिए गरीब, श्रम करने वाले हाथों को बढ़ाने पर यकीन करता है। अतः वह जनसंख्या वृद्धि में भी यकीन रखता है। यह एक भिन्न सोच है। निःसंदेह, इस सोच का विकास, निजी और तात्कालिक समस्या के निदान के रूप में हुआ है। किन्तु सच यही है कि गरीब और अमीर के बीच श्रम संचय और धन संचय की यह प्रतिद्वन्द्विता अंततः गरीब को ही नुकसान पहुंचाती है। यह तय मानिए कि जनसंख्या का बोझ सिर्फ आर्थिक स्तर पर ही नहीं, मानसिक, शारीरिक, शैक्षिक, प्राकृतिक, सामाजिक, आत्मविश्वास, सम्मान और राष्ट्रभाव के स्तर पर भी गरीब बनाता है।

अधिक आबादी, अधिक गरीबी

पृथ्वी के जनसंख्या नक्शे पर निगाह डालिये। पृथ्वी की कुल इनसानी जनसंख्या का 75.5 प्रतिशत भाग लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, एशिया, पोलिनेशिया, मेलानेशिया तथा माइक्रोनेशिया के अल्प विकसित देशों में निवास करता है। ये सभी क्षेत्र जनांकिकी संक्रमण की प्रथम या द्वितीय अवस्था से गुजर रहे हैं। शेष 24.5 प्रतिशत जनसंख्या का निवास बने यूरोप, उत्तरी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जापान और न्यूजीलैंड आदि सभी देश, विकसित श्रेणी के देश हैं। आकलन भी है कि वर्ष 2050 तक दुनिया की 90 प्रतिशत आबादी मात्र कुछ देशों में रह रही होगी। ये देश हैं : भारत, चीन, पाकिस्तान, नाइजीरिया और बांग्लादेश। यूं तो भारत, आबादी के मामले में नंबर दो है; किन्तु भारत में जनसंख्या वृद्धि दर, सर्वाधिक आबादी वाले चीन से ज्यादा है। कारण कि भारत में प्रजनन दर, चीन के दोगुने के आसपास है। यहां यह बात भूलने की नहीं कि चीन ने जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को सख्ती के साथ लागू किया है। कहना न होगा कि शिक्षा और सोच के मोर्चे पर पिछड़ने के नतीजे बहुत बुरे हैं। भारत में कुपोषितों की जनसंख्या, दुनिया के किसी भी देश से ज्यादा है। आर्थिक रूप से पिछड़े होने के बावजूद, बाल जीवन दर के मामले में बांग्लादेश और नेपाल की स्थिति भारत से बेहतर है।

वर्ष 1798 में इंग्लैंड के अर्थशास्त्री थॉमस रॉबर्ट माल्थस ने लिखा था कि अगले 200 वर्षों में जनसंख्या 256 गुना हो जायेगी। किन्तु जीवन निर्वाह की क्षमता में मात्र नौ गुना ही वृद्धि होगी। भारत के मामले में कहा गया कि वर्ष 2050 तक भारत की आबादी बढ़कर 162 करोड़ हो जायेगी। खाली होते गांव और शहरों में बढ़ता जनसंख्या घनत्व! पानी और पारिस्थितिकी पर भी इसका दुष्प्रभाव दिखने लगा है। सोचिए, आगे चलकर संसाधनों की मारामारी का संकट कितना भयावह होगा? संदेश साफ है कि आबादी नियंत्रित करनी होगी।

भारत में परिवार नियोजन

ऐसा नहीं है कि भारत में जनसंख्या नियंत्रण को लेकर कोई सोच नहीं है। भारत, दुनिया का पहला ऐसा देश है, जिसने परिवार नियोजन को एक सरकारी कार्यक्रम के तौर पर अपनाया। 1950-60 के दशक में शुरू हुआ यह कार्यक्रम कभी प्रोत्साहन योजनाओं के साथ चला और कभी जबरन नसबंदी अभियान के रूप में। एक जमाने में नसबंदी के बदले जमीनों के पट्टे दिये गये। वर्ष 1975—आपातकाल में नसबंदी करने वाले डॉक्टरी दल छापामार शैली में गांवों में आते थे और जबरन नसबंदी करके चले जाते थे। बचने के लिए लोग खेतों में छिप जाते थे। सरकारी कर्मचारियों को नसबंदी के लक्ष्य दे दिये गये थे। इस अभियान के लिए शायद ही कोई संजय गांधी को याद करे।

उस जबरदस्ती का कुछ ऐसा नकरात्मक असर हुआ कि इसके बाद किसी राजनीतिक दल ने परिवार नियोजन को अपना एजेंडा नहीं बनाया। आगे चलकर स्वयं कांग्रेस ने इससे परहेज किया। हां, 1989 में विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गयी पहल को भारत सरकार ने जरूर अपनाया। 'बच्चे, दो ही अच्छे' तथा 'हम दो, हमारे दो' जैसे नारे गांवों की दीवारों पर लिखे गये। परिवार नियोजन के औजार भी सरकारी प्रचार का सामान बने। इससे थोड़ी चेतना आयी। इसके बाद प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों में गर्भ निरोधक गोलियां और कण्डोम आदि मुफ्त मिलने लगे। अब गर्भ निरोधक टीके भी हैं। नसबंदी कराने पर आज भी सरकारी अस्पतालों में प्रोत्साहन राशि मिलती है। किन्तु अभी भी ये सब हर विवाहित जोड़े की पहुंच में नहीं है। प्रजनन दर कम न होने के दूसरे कारणों में एक कारण कम उम्र में विवाह है। एक कारण, लड़के के चक्कर में कई संतानों को जन्म देना भी है। गरीबी, अशिक्षा और सोच तो मुख्य कारण हैं ही। फिर भी संतुष्ट हो सकते हैं कि पहले जहां, सात-आठ बच्चे आम थे, अब भारतीय महिलाओं में अपने पूरे जीवन के दौरान बच्चे पैदा करने की औसत दर कम होकर 2.7 हो गयी है। आवश्यकता, इस प्रजनन दर को और कम करने तथा आबादी घनत्व को संतुलन में लाने की है।

तय कीजिए

इसके दो तरीके हैं। अर्थशास्त्री माल्थस के मुताबिक या तो हम इंतजार करें कि जनसंख्या वृद्धि के कारण मांग-आपूर्ति की समस्या सिर से ऊपर चली जाये। ऐसा होने पर दुर्भिक्ष, अकाल, युद्ध तथा संक्रामक रोगों के फैलने की स्थिति बने और परिणामस्वरूप जनसंख्या खुद-ब-खुद नियंत्रित हो। दूसरा तरीका यह है कि हम अभी से संजीदा हों; जनसंख्या नियंत्रण के जो भी नैतिक तरीके हों, उन्हें अपनायें। इसी के साथ-साथ संसाधनों का दुरुपयोग करने की बजाय सदुपयोग करने को अपनी आदत बना लें। दक्षिण भारत के कई राज्यों ने जनसंख्या नियंत्रित करने के नैतिक तरीकों पर भरोसा जताया है। इसका लाभ भी वहां की प्रकृति, आय, शिक्षा और तरक्की के दूसरे मानकों पर दिखने लगा है। उत्तर भारत कब ऐसा करेगा? ❑

आंदोलन क्षेत्रे

हल सत्याग्रह : राजनीति या विवशता

❑ बाबा मायाराम

सवाल उठता है कि किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? कई अध्ययनों से उभरकर आया है कि खेती की लागत बढ़ती जा रही है, पर उपज नहीं बढ़ रही है। फसल के दाम नहीं बढ़ रहे हैं। कर्ज बढ़ता जा रहा है। ऊपर से कभी बाढ़, कभी सूखा, कभी अनियमित बारिश से फसल बरबाद हो जाती है। फसल का मुआवजा नहीं मिलता। फसल बीमा से भी किसान को बहुत मदद नहीं मिलती। कुल मिलाकर किसान के कंधे पर सरकार का हाथ नहीं है और उसे पूरी तरह बाजार के भरोसे छोड़ दिया गया है, जो उसका शोषण करता है।

हाल ही में राजधानी में किसानों का अनूठा 'हल सत्याग्रह' हुआ। इसमें देशभर के छोटे-बड़े सभी वर्ग के किसान साथ आये और अपनी जिन्दगी, खेत और गांव को बचाने की लड़ाई का आगाज किया। किसानों ने अपनी मांग, चिन्ता और पीड़ा को अनूठे अंदाज में व्यक्त किया और वे गीतों, ढोल-मंजीरों और नृत्य के माध्यम से इंद्रधनुषी छटा बिखेरते रहे।

इस दौरान मैं उस छोटे बच्चे को देखता रहा, जो बिहार के रोहतास जिले के सुदूर गांव से अपनी मां के साथ लम्बी ट्रेन यात्रा करके आया था। धूप में बैठी मां ने उसकी अंगुली पकड़ रखी थी और वह कौतूहल से भीड़ को देख रहा था। बुजुर्ग चिलचिलाती धूप में मंच की ओर टकटकी लगाये बैठे थे। महिलाएं सिर पर कलश रखकर गीत गाते हुए, गाजे-बाजे के साथ मंच की ओर जा रहीं थीं। बीच-बीच में जय किसान के नारों से माहौल गरमा रहा था।

बहुत दिनों बाद किसानों का ऐसा अभूतपूर्व समागम दिखायी पड़ा। इसे देखकर मुझे टिकैत के आंदोलन की याद आ गयी, जो दिल्ली के बोट क्लब पर हुआ था। हालांकि इस बार भीड़ उतनी नहीं थी लेकिन गुणात्मक रूप से फर्क यह था कि इसमें देश के कोने-कोने से किसान आये थे और सभी तबके के किसान इसमें शामिल थे। खास बात यह रही कि इसमें दलित, आदिवासी, हिन्दू, मुस्लिम और सिख सभी वर्गों के किसान शामिल थे।

दिल्ली के जंतर-मंतर पर देश के कोने-कोने से आये किसान अपने खेत की मिट्टी को दस हजार कलशों में भरकर लाये थे, जिसमें महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे, अन्ना हजारे के गांव की मिट्टी भी शामिल थी। कलशों को लाने के पहले खेत से मिट्टी लेने के लिए पूजा-अर्चना भी की गयी थी। यह सभी इसी पवित्र मिट्टी से उन किसानों का स्मारक बनाना चाहते हैं जो असमय खुदकुशी कर हमारे बीच से चले गये। सत्याग्रह में महाराष्ट्र के किसानों की विधवाएं भी आयीं थीं, जिनके पति खेती से परेशान होकर जान दे चुके हैं।

सम्मेलन के दौरान किसानों के मान और सम्मान के प्रतीक रूप में एक विशाल हल को अपने कंधों पर 15 अगस्त तक उठाये रखने का संकल्प लिया गया। इस हल को देश के प्रसिद्ध कलाकारों ने डिजाइन किया था। यह भी संकल्प लिया गया कि यह हल या तो रेसकोर्स में रखा जायेगा या फिर आंदोलन करने वाले किसानों के कंधों पर ही रहेगा। किसानों की मांग थी कि दिल्ली रेसकोर्स वाली जमीन, जो कभी किसानों से ली गयी थी और जहां अभी घुड़दौड़ पर सट्टा लगाया जाता है, वहां पर किसानों का स्मारक बने।

करीब डेढ़ क्विंटल वजन के हल को कंधों पर उठाये रखने के लिए बारी-बारी से करीब 10 लोगों की जरूरत होती थी, किसानों ने इसके लिए टोलियां बनायी थीं। जिन किसानों को वापस लौटना था, वे भी वहीं रुक गये। लेकिन कुछ ही समय बाद पुलिस का अमला दल-बल के साथ आया और हल समेत वहां उपस्थित किसानों को गिरफ्तार कर लिया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश के बाद सबको रिहा कर दिया गया।

सवाल उठता है कि किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? कई अध्ययनों से उभरकर आया है कि खेती की लागत बढ़ती जा रही है, पर उपज नहीं बढ़ रही है। फसल के दाम नहीं बढ़ रहे हैं। कर्ज बढ़ता जा रहा है। ऊपर से कभी बाढ़, कभी सूखा, कभी अनियमित बारिश से फसल बरबाद हो जाती है। फसल का मुआवजा नहीं मिलता। फसल बीमा से भी किसान को बहुत मदद नहीं मिलती। कुल मिलाकर किसान के कंधे पर सरकार का हाथ नहीं है और उसे पूरी तरह बाजार के भरोसे छोड़ दिया गया है, जो उसका शोषण करता है।

नई भाजपा सरकार से किसानों को बहुत उम्मीदें थीं। भाजपा ने अपने चुनावी घोषणा-पत्र में वादा किया था कि हर फसल पर किसान की लागत का डेढ़ गुना दाम देंगे, लेकिन सत्ता में आने के बाद वह अपने वादे से मुकर गयी है। इसके उलट उसने समर्थन मूल्य भी नहीं बढ़ाया और अनेक राज्य सरकारें जो बोनस दे रही थीं, उस पर रोक लगा दी। यूरिया का आयात घटाकर देश में खाद का संकट पैदा कर दिया गया। अब सरकार भूमि अधिग्रहण बिल के माध्यम से किसानों से जमीन छीनने की कोशिश कर रही है। किसान चाहते हैं कि जमीन हड़पने वाली भूमि अधिग्रहण बिल वापस लिया जाये। फसल बर्बाद होने पर मुआवजा दिया जाये।

किसान परिवार को 15 हजार रुपये प्रतिमाह की आय की गारण्टी कानून बने व भूमिहीन परिवारों को दो एकड़ जमीन दी जाये।

सवाल है कि खेती और गांव को बचाना क्यों जरूरी है? एक तर्क दिया जाता है कि अगर खेती घाटे का धंधा है तो किसान खेती छोड़ क्यों नहीं देते? गांव में रोजगार नहीं है तो शहरों में क्यों नहीं बस जाते। परंतु खेती के पक्ष में दो-तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक, मनुष्य का पेट अनाज से ही भर सकता है, किसी और चीज से नहीं तथा अनाज खेत में पैदा होता है। अब तक आधुनिक तकनीक इसका कोई अन्य विकल्प नहीं ढूंढ़ पायी है और आगे भी इसकी संभावना नहीं है।

दूसरा, खेती ही वास्तव में उत्पादन होती है, वहां एक दाना बोओ, पच्चीस दाने पाओ। ऐसा किसी और माध्यम से सम्भव नहीं है। उद्योगों में कच्चा माल डालने से उसमें रूप परिवर्तन होता है। इसलिए खेती का महत्त्व हमेशा बना रहने वाला है। फिर बड़ी तादाद में किसान खेती को छोड़कर क्या करेंगे? हमारी देश की जलवायु व जैव-विविधता खेती के अनुकूल है। पश्चिम में छह माह बर्फ गिरती है। वहां ठंडी जलवायु है। हमारी गर्म जलवायु है। हमारे यहां फसलों में बहुत विविधता है। ऐसे में हम खेती को ही प्रथम दर्जा क्यों नहीं देते। हमारा देश कृषि-प्रधान है, जिसे पढ़-सुनकर बड़े हुए हैं। यदि वह खत्म हुई तो देश कैसे बचेगा?

इस आंदोलन में उड़ीसा से प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक देवल देव भी आये थे, जो नियामगिरि के पास गांव में देशी धान की एक हजार प्रजातियों को संरक्षित व संवर्धित कर रहे हैं। सुभाष पालेकर की जीरो बजट प्राकृतिक खेती भी किसानों की पसंद बनती जा रही है। किसानों की खेती को बचाने के लिए संघर्ष भी करना होगा। इस राह पर वे चल पड़े हैं और कम खर्चे, कम कर्जे और श्रम आधारित स्वावलम्बी खेती की ओर बढ़ना होगा तभी खेती, किसान और गांव बचेंगे। ❑

वैकल्पिक रचना-जगत

खादी को असरकारी बनाने की चुनौती

❑ डॉ. सुगन बरंठ

खादी वस्त्र और विचार की वर्तमान बुरी स्थिति के लिए सरकार और हम खादी संस्था वाले बराबर के जिम्मेदार हैं। सरकार ने जो किया उस पर हम गत पांच वर्षों में खादी मिशन की सभाओं में, गांधी स्मृति और दर्शन समिति, नई दिल्ली के मंच से व खादी आयोग के सामने बहुत बोल चुके हैं। अब भविष्य के कार्यक्रम तय करने की हमसे अपेक्षा है। दूसरे शब्दों में कहें तो अ-सरकारी खादी को असरकारी बनाने की दिशा में मनन, चिन्तन और सारी शक्ति लगाना है। इसके लिए जरूरी है कि अब हमें अपनी लकीर बड़ी करनी होगी और जो भी साथ आये उन्हें साथ जोड़ना होगा। हमारी आत्मिक शक्ति सकारात्मक होगी। खादी विचार और वस्त्र को सर्वोदय दर्शन का अविभाज्य अंग मानकर इसका संरक्षण व संवर्धन करना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

इस चुनौती के पक्ष में सर्वप्रथम यह बात है कि यह मेरा अकेले का फितूर नहीं है। बल्कि अपने अनेक साथी इसी दिशा में सोच रहे हैं और कुछ करना चाहते हैं या कर रहे हैं। सर्व सेवा संघ की आज की ही नहीं, जब विनोबा के मार्गदर्शन में ग्रामदान-अभियान तूफान की गति पर था तभी से यह नीति और आवाहन रहा है कि हमें खादी के क्षेत्र में सरकार पर निर्भरता क्रमशः कम करनी चाहिए। नया मोड़ के नाम से समय-समय पर काम हुआ। उनका मूल बीज चरखा संघ के नव संस्करण में है। अतः यह कोई बिलकुल नयी बात है, यह मन से निकाल देनी चाहिए।

गांधीयुग की खादी सरकारी मदद पर नहीं, अपितु सरकारी विरोध के बावजूद खड़ी हुई थी। स्वराज्य प्राप्ति के बाद सरकार ने अर्जी की और चरखा संघ (सर्व सेवा संघ) ने स्वीकार किया। सरकार पर खादी आश्रित नहीं हुई। अतः बढ़ी और आज भी जिन्दा है। लेकिन क्रमशः सरकार का आश्रय जितना बढ़ता जा रहा है, खादी उतनी ही दुर्बल होती जा रही है। इसलिए सबल व सक्षम बनाये रखने का दायित्व हम खादी संस्था वालों पर सबसे पहले है।

आज असरकारी खादी का काम करने वालों के सामने जो चुनौतियां दिखाई पड़ रही हैं, वह इस प्रकार हैं :—

पहली चुनौती, असरकारी खादी विचारक, उत्पादक और विक्रेताओं का भ्रातृ-मंडल खड़ा करना, इसे स्थापित करना और बढ़ाना। आज असरकारी खादी उत्पादन और बिक्री करने वाले बिखरे हुए हैं। हमें एकत्रित होकर सर्व सेवा संघ के अंतर्गत अपना स्वायत्त संगठन खड़ा करना होगा। जिस तरह अनेक संस्थान सरकार के अंतर्गत होने पर भी स्वायत्त होते हैं, और सरकार उनकी कार्यनीति में हस्तक्षेप नहीं करती तथा उन्हें संसद द्वारा सीधे मान्यता दी गयी होती है, उसी तरह यह संगठन सर्व सेवा संघ के अंतर्गत होते हुए स्वायत्त हों। दूसरी बात है कि हम अभी जितने हैं उतने मिलकर यह संगठन खड़ा करें और चलते चलें। संख्या का भूत सर पर न बैठने दें। जिन्हें खादी विचार और वस्त्र की शुद्धता की कदर है वे साथ में आ ही जायेंगे।

दूसरी चुनौती, खादी की शुद्धता स्थापित

करना। हमें यह भी देखना और समझना होगा कि गैर पारम्परिक ऊर्जा (पवन, सौर ऊर्जा, कचरे से और बायोगैस से उत्पादित ऊर्जा) का खादी उत्पादन में उपयोग करें या नहीं करें? करें तो किस सैद्धांतिक आधार पर? इसी तरह इन्हीं ऊर्जा के आधार पर अब करघे भी चलाने का तंत्रज्ञान विकसित हुआ है। इससे कताई, बुनाई के श्रम में राहत, आय में बढ़ोत्तरी और सूत एवं कपड़े की गुणवत्ता में सुधार को हम किस नजर से देखते हैं? आज न गांधी की आंधी है न आजादी की लड़ाई। आज तो हमें इसे पर्यावरण और स्थाई विकास की नजर से देखना और लोगों के सामने रखना है। साथ ही हमारी अपनी प्रमाण-पत्र की व्यवस्था कैसी हो।

तीसरी चुनौती, असरकारी खादी की बिक्री व्यवस्था। एक तरह से यह चुनौती भी है और अवसर भी। आज का समाज खादी को एक तरफ पवित्र वस्त्र के रूप में देखता है, दूसरी तरफ उससे भी कहीं ज्यादा वह इसे स्वास्थ्य और पर्यावरण के नजरिये से देखता है। पवित्र इस माने में कि यह राष्ट्रपिता और आजादी से तथा ग्रामीण गरीबों की महिलाओं, परित्यक्ताओं की आजीविका से जुड़ा वस्त्र है। पर उत्तर औद्योगिक व्यवस्था और जागतिकी-करण के दौर में मानव अब इतना संवेदनशील नहीं है। अतः खादी की पवित्रता केवल मानने भर की है। स्वास्थ्य आज के व्यक्ति को ज्यादा करीबी विषय लगता है। हम देखते हैं कि भाग-दौड़ की इस जिन्दगी में वह स्वास्थ्य के बारे में बहुत कुछ कर रहा है। इसी तरह एक वर्ग विशेष की सजीव व रसायन रहित खेती उत्पादनों में रुचि बढ़ रही है। इसी कड़ी में यह वर्ग विशेष वस्त्रों में खादी को महत्त्व देता है। यह वर्ग खादी बिक्री में हर तरह से हमारी मदद कर सकता है। यह हैं—प्रदर्शनी लगाना, प्रचार-प्रसार करना, विचार फैलाना। परंतु बिक्री व्यवस्था से पहले हमारे सदस्यों के उत्पादन, विशेषता की जानकारी सभी को हो।

चौथी चुनौती, स्वावलम्बी खादी का क्या करें? पहले हर खादी संस्था अन्य कार्यकर्ताओं के लिए सूत की बुनाई खुद के खर्चे से कर देती थी, जो स्वावलम्बन हेतु कातते थे। अब ऐसे कार्यकर्ताओं की व नियमित पेटी चरखा पर कातने वालों की संख्या कम हो रही है। अंबर पर फिर भी लोग स्वावलम्बन के लिए कात रहे हैं और ऐसी संस्थाएं बढ़ रही हैं। इसमें कुछ धर्मगुरु हमसे आगे निकल रहे हैं। अंबर चरखे पर कताई करने में गांव में अधिक समय रहने वाले युवा रुचि ले रहे हैं। हमें इन्हें पूनी की पूर्ति और इनके सूत की बुनाई न्यूनतम दरों पर करनी ही होगी। पेटी चरखा का सूत आजकल कारीगर बुनाई में नहीं लेते, उनका कहना है कि यह सूत कच्चा होता है। पर असरकारी खादी संस्थाओं को स्वालम्बन की दृष्टि से कातने वालों के लिए न्यूनतम दरों पर व्यवस्था करनी ही होगी। यदि खादी विचार जिन्दा रखना है और उसे मात्र वस्त्र नहीं बनने देना है तो यह जरूरी है।

पांचवीं चुनौती, आज खादी पर प्रबोधन करने वाले काफी लोग उपलब्ध हैं। वे चरखे के पीछे का सारा तत्त्वज्ञान, स्वावलम्बन, समता, सामूहिकता, आत्म-विश्वास से पर्यावरण तक खादी की सारी सैद्धांतिकी लिखते हैं। इनकी क्षमता और चरखे निर्माता, देखभाल, दुरुस्ती, स्पेअर पार्ट आदि का ज्ञान रखने वालों की क्षमता को जोड़कर हमें त्वरित खादी कोर्स/खादी विद्यालय शुरू करना होगा। आज तो इन दोनों में (प्रबोधक और तंत्रज्ञ) कोई आपसी सम्पर्क नहीं है। देशभर में इनमें समन्वय की आवश्यकता न हमें महसूस होती है न इस तरफ हमारा ध्यान ही है, इसका परिणाम यह है कि दोनों कुशलताएं हमारे अपनों के पास होते हुए भी हम खादी का विस्तार नहीं कर पा रहे हैं। खादी आयोग ने या केन्द्र सरकार ने जो इस तंत्रज्ञान, यंत्रज्ञान संशोधन के लिए व्यवस्था खड़ी की है वे और खादी संस्थाएं तथा खादी प्रबोधक (सर्वोदय वाले) एक-दूसरे को जानते तक नहीं हैं, जैसे एमगिरी और सर्व सेवा संघ तथा ग्राम सेवा मंडल तीनों वर्धा में हैं, पर तीनों एक-दूसरे को पहचानते तक नहीं। इसलिए एक-दूसरे को जानने-समझने की हमारी तैयारी होनी चाहिए और उसके आगे के कदम के रूप में एक-दूसरे से पूर्ण समन्वय के साथ एक ध्येय में बंधना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यह जगह आज खाली है। वहां मांग है, पर भरेगा कौन? सर्व सेवा संघ खादी समिति को पहल करना होगा और असरकारी खादी संघ को आगे बढ़ाना होगा। अम्बर पूनी/पेटी चरखा, पुर्जों को जिले स्तर तक पूर्ति करना समय की मांग है। जिला स्तर पर चरखा दुरुस्ती, देखभाल का तंत्रज्ञ (मैकेनिक) हो, यह भी इसके साथ आवश्यक है। इसमें अब देश को एन. आई. टी. से जोड़ना सुलभ हुआ है। उसका लाभ लेकर क्या हम एक साल का वस्त्र विज्ञान कोर्स डिजाइन कर सकते हैं? हमारे अपने सरंजाम के कार्यकर्ता और प्रबोधक हैं और जगह भी है।

छठी चुनौती, खादी के लिए आवश्यक सरंजाम कार्यालय या निर्मिती केन्द्रों को सक्षमता से खड़ा करना। सौभाग्य से प्रदेश स्तर पर या क्षेत्र स्तर पर ऐसे कार्यालय किसी तरह जिन्दा हैं, भले ही अब वे मरने की कगार पर हों। परंतु इन्हें जिन्दा कर इनके मार्फत पूनी, यंत्र, करघे, चरखे देश में 5 जगह उपलब्ध कराना चाहिए। इसी के साथ उपलब्ध कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण में संशोधन करना।

मेरी नजर से आखिरी यानी छठी चुनौती अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। फिर भी, उपरोक्त इन सभी चुनौतियों को झेलना, इसमें से राह निकालना और खादी को सक्षमतापूर्ण स्थिति में पुनः स्थापित करने हेतु संघर्ष करना अत्यन्त जरूरी है। यह गहन, सघन और सातत्यपूर्ण चलने वाला काम है। संघ में खादी समिति रहना या न रहना, इसको दूसरी समितियों से जोड़ना आदि संघ अध्यक्ष के निर्णय होते हैं। वह अपने मंत्री और वरिष्ठ तथा अनुभवियों की सलाह जरूर लेते हैं। फिर भी खादी समिति का संयोजक भी अध्यक्ष के साथ बदल सकता है। इसीलिए हम संघ से प्रेरित हों, पर स्वायत्त संगठन निर्माण करें। इसकी पद्धति और समय मर्यादा भी तय करें, यह समय की मांग है। ❑

सर्वोदय जगत पुरालेख

स्वतंत्रता का मूल्य : सजगता

❑ प्रो. रामकिशोर पशीने

साधारणतः हर एक व्यक्ति अपने स्वार्थों और अधिकारों के प्रति अधिक सजग रहता है। जो लोग अपने कर्तव्यों व जनहित के प्रति अधिक श्रद्धावान और सजग होते हैं वे ही देश और समाज के लिए कुछ बड़े काम कर जाते हैं। इसके विपरीत यदि जनता आमोद-प्रमोद और क्षुद्र स्वार्थों में डूबी रहती है, तो देश की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है।

हमारे संविधान में नगारिकों को कुछ मूलभूत अधिकार दिये गये हैं, परंतु उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे देशहित के लिए अपने निजी स्वार्थों का त्याग करने को तत्पर होंगे। महात्मा गांधी ने अपने उदाहरण से देश को यही सीख दी है।

स्वतंत्रता का महत्त्व

अति प्राचीन काल से तानाशाहों ने मनुष्य के मानवी अधिकारों को कुचला है। इसीलिए अठारहवीं शताब्दी से स्वतंत्रता और मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष होते रहे हैं। भारत में भी इसकी लहर आयी और हमारे देशभक्तों ने जी-जान की बाजी लगाकर स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जन्में लोग कभी-कभी स्वतंत्रता का महत्त्व नहीं समझ पाते हैं।

आज हमारी नयी पीढ़ी कुछ गुमराह हो गयी है। वह मौज-मस्ती, आवारागर्दी और अनुशासनहीनता को ही स्वतंत्रता समझ बैठी है। इसका एक कारण यह है कि उसे प्रौढ़ लोगों से सच्चा अनुकरण व मार्गदर्शन नहीं मिल रहा है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कई लोगों ने त्याग व देश-प्रेम के ऊंचे आदर्शों को भुला दिया और स्वार्थ व धन-प्राप्ति के पीछे पड़ गये। वे अपने परिवार व संतानों के लिए अधिक-से-अधिक सम्पत्ति छोड़ जाना चाहते हैं और किसी प्रकार सत्ता प्राप्त कर दूसरों का शोषण करना चाहते हैं।

श्रम-संगठन

दूसरी ओर संगठित श्रम-संगठन अधिक शक्तिशाली बनते गये और पूंजीपतियों द्वारा शोषण न होने देने के लिए संघर्ष करते रहे। इस संघर्ष में उन्हें निचले तबके के लोगों व आम जनता की सहानुभूति प्राप्त हुई। जहां कर्मचारियों के संगठन अधिक शक्तिशाली हैं, वहां उन्होंने हड़ताल आदि का सहारा लेकर पिछले कुछ दशकों में बहुत अधिक वेतन-वृद्धि प्राप्त कर ली है। लेकिन असंगठित श्रमिक और बदहाली के शिकार हुए हैं।

समान आय व अवसर

अब समय आ गया है कि संगठित श्रम-संगठनों को अपनी नैतिक व राष्ट्रीय जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। कई जगह यह मांग है कि श्रमिकों-कर्मचारियों को उद्योगों-उपक्रमों के संचालन-प्रबंधन में हिस्सा मिले। विशेषतः शासकीय व अर्धशासकीय उपक्रमों में श्रमिकों की सहभागिता की मांग को स्वीकारा जा सकता है।

हमारी शिक्षा-पद्धति में कुछ मौलिक दोष हैं, जो शिक्षितों को आम जनता से अलग करते हैं और उन्हें आम जन-जीवन समझने व ऊंचा उठाने में असमर्थ बनाते हैं। शिक्षा-प्रणाली ऐसी हो कि गरीब किसान और श्रमिक की संतान भी उपयोगी शिक्षा पा सके और 8-10 वर्ष की शिक्षा के बाद योग्य नागरिक बन सके, उपयोगी काम कर सके। अभी कुछ शिक्षा-सुविधाएं केवल धनी लोगों के लिए हैं, जिन्हें प्राप्त कर वे हजारों रुपये कमाने लगते हैं। इससे असमानता बढ़ती है और गरीब लोगों के मन में उनके प्रति कटुता जागती है। आय और वेतन-नीति ऐसी हो कि सबको लगभग एक समान लाभ मिले, तभी सच्चे अर्थों में समाजवाद व स्वतंत्रता आयेगी। आर्थिक सामाजिक असमानता मानवी संबंधों को प्रेमपूर्ण बनाने में बड़ी भारी रुकावट है।

आत्म-निर्भरता

स्वतंत्रता को टिकाये रखने के लिए हमें अन्न, वस्त्र, शस्त्रास्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं में आत्म-निर्भर बनना होगा। उत्पादन को अधिकतम मात्रा में बनाये रखने के लिए योजनापूर्वक कार्य करना होगा। श्रमिकों को देश-हित सामने रखकर हड़ताल आदि समाज-विरोधी कार्यों से बचना होगा।

प्रसन्नता की बात है कि कोयला, लोहा, यंत्र-सामग्री, जहाज, कपड़ा आदि बुनियादी बातों में हम स्वावलंबी होते जा रहे हैं। खनिज तेल की खोज जारी है और ऊर्जा के नये स्रोत भी खोजे जा रहे हैं।

विश्व बंधुत्व की भावना

हमारे देश की संस्कृति और विरासत के अनुकूल हमारी अंतर्राष्ट्रीय नीति सबसे मेल और सहकार करने की है। पंचशील का सिद्धांत हमने माना है। गांधी और बुद्ध की अहिंसा को अपनाते हुए भी अंतर्राष्ट्रीय मामलों में हमेशा इसे लागू नहीं किया जा सकता है, यह हमारा अनुभव है। सभी मतभेदों को बातचीत के द्वारा सुलझाने का प्रयत्न हम करते हैं, तथापि विदेशी आक्रमणों से अपनी रक्षा करने की हमारी पूरी तैयारी होनी चाहिए। यह सब देश की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए जरूरी है।

देश की शक्ति गांवों में

औद्योगिक विकास, आवागमन व संपर्क के साधनों का समुचित उपयोग और सामरिक शक्ति भरपूर हो, यह सब तो मानी हुई बात है। परंतु गत कई युद्धों में यह पाया गया है कि अंततः देश की शक्ति और सहनशीलता गांवों के समुचित विकास, अन्नोत्पादन और जीवटता पर निर्भर करती है। इसलिए देश के गांवों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

हम पाते हैं कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय गांवों का वैसा विकास नहीं हुआ है, जैसा कि होना चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि-सिंचाई व अन्य विकासात्मक कार्यों में कमी आयी है। महात्मा गांधी के देश में ऐसा नहीं होना चाहिए था। अब भी समय है कि हम गांवों को नष्ट होने से बचायें और समुचित शिक्षा-पद्धति का विकास करके सबको लगभग एक-सा जीवन व अवसर दिलाने का प्रयत्न करें। गोपालन, चर्मोद्योग, वनों का विकास आदि क्षेत्रों में पूरी शक्ति से काम होना चाहिए। *('सर्वोदय जगत, वर्ष 6, अंक 1' से)*

स्वास्थ्य

कम्प्यूटर व इंटरनेट से होने वाले रोग एवं उनके उपचार

❑ डॉ. विनायकराव बी. मोरे

विश्व में आज कम्प्यूटर एवं इंटरनेट छा गया है। प्रत्येक घर में, गांव में, शहर में कम्प्यूटर-इंटरनेट, टी. वी. का साम्राज्य है। और, इस जमाने की यह अत्यन्त अनिवार्य उपयोगी चीज बन गयी है। हम इसको त्याग नहीं सकते। किन्तु इसका उपयोग हमें अपने स्वास्थ्य का रक्षण करते हुए करना चाहिए। क्योंकि इसका अतियोग होने से या गलत ढंग से उपयोग करने से फायदा होने के बदले नुकसान ही होता है। इससे कई कष्टप्रद बीमारियां हो सकती हैं, जो आयुष्य क्षय करके जान भी ले सकती हैं। ऐसा मेरा स्पष्ट मंतव्य है।

मैं मानता हूं कि ज्ञान प्राप्ति के लिए या भांति-भांति की जानकारी प्राप्त करने के लिए और मनोरंजन के लिए कम्प्यूटर और इंटरनेट अत्यन्त जरूरी है। फिर भी इन चीजों का उपयोग अनिवार्य कारणों पर ही करना चाहिए। इंटरनेट, टी. वी., कम्प्यूटर के गुलाम हो जाने से हम कई व्याधियों को आमंत्रित करते हैं। जैसे कि—

(1) नेत्र-ज्योति कम होना, धुँधला दिखना, कम उम्र में चश्मा आना, चश्मे का पॉवर बढ़ना आदि। (2) गर्दन एवं दोनों कंधों का जकड़ जाना और उसमें दर्द होना, यह सब सामान्य है। एलोपैथिक डॉक्टर इसे सर्वाईकल स्पोंडिलायटिस कहते हैं। (3) कमर में भी तीव्र दर्द होता है। इसे लंबर स्पोंडिलाइटिस कहते हैं। (4) सतत बैठकर काम करने से विबंध-अम्लपित्त (Constipation-Acidity) भी होते हैं। (5) शारीरिक कमजोरी भी होती है और जातीय जीवन (Sex Life) में मजबूरी होती है।

इस तरह की कई बीमारियां हो सकती हैं। हमें इससे अपने को सँभालना चाहिए। इसलिए सहजता से सभी लोगों के हर-रोज करने योग्य निरुपद्रवी, सरल एवं निर्दोष और सस्ते-सुलभ आयुर्वेदिक उपचार पेश करता हूं।

सबसे पहले नेत्रज्योति बढ़ाने के तथा चश्मे में पॉवर आये नहीं या आया है तो बढ़े नहीं, बल्कि पॉवर कम हो, इसके इलाज देखेंगे।

(1) 50 ग्राम मिश्री, खड़ी शक्कर और 50 ग्राम लौंग का चूर्ण सुबह-शाम एक-एक चम्मच, एक चम्मच त्रिफलाधृत के साथ गाय के दूध के साथ पीना चाहिए।

लौंग के बारे में भावप्रकाश में कहा है कि ''लवंगम् कटुकम् तिक्तम्, लघु नेत्र हितम् हिमम्। दीपनम् पाचनम् रुच्य कफपिताश्च नाशकृत। तृष्णाम् छर्दि तथा आध्यानम् शुलभ् आशु विनाशयेत्। कासं श्वासं च हिक्का च क्षयम् क्षपयति धृवम्।।''

अर्थात्, लौंग कड़वे, तीखे, पचने पर हल्के आंखों के लिए हितकारी और ठंडा है। भूख लगाना यानी कि दीपन और भोजन का पाचन करना और साथ में प्रीतिकारक रुचिकारक भी है, कफ-पित्त की विकृति दूर करता है तथा मुख शोष—उलटी—पेट का गोला, पेट का भारीपन, गैस (आध्मान-आटोप) तुरंत मिटाता है। साथ ही खांसी-दमा को भी मिटाता है।

(2) सप्तामृत लौह (विश्वसीनय फार्मसी) की 1-1 गोली दिन में दो बार पानी के साथ भोजन के पश्चात् लेनी चाहिए।

(3) दिन में दो से तीन बार चार-पांच पत्ते डोडी (जिवन्ति) या निर्गुंडी (सम्हाल-मेहड़ी) को चबाना चाहिए। उसका स्वरस 2 से 3 चम्मच सम भाग जल मिलाकर लेना चाहिए।

गला, गर्दन व दोनों कंधों के जकड़ जाने को आयुर्वेद में मन्यास्तंभ (सर्वाईकल स्पोंडिलिटिस) कहते हैं और कमर के दर्द को कटिशूल (लंबर स्पोंडिलिटिस) कहते हैं।

(1) इन रोगों में लकड़ी की पाट के ऊपर या नीचे जमीन पर पतली गद्दी या ऊनी कंबल अथवा खद्दर की या सूती चद्दर बिछाकर सोना चाहिए। तकिया नहीं लगानी चाहिए।

(2) पारिजातक के (हरिश्रृंगार के) पांच-छः पत्ते तथा निर्गुंडी के (सम्हालु-मेहडी के) पांच-छः पत्ते लेकर चटनी बनाकर एक गिलास जल मिलाकर उबालना चाहिए और आधा कप बच जाने पर, छानकर एक से दो चम्मच अरेंडी का (Castoriol) तेल मिलाकर सुबह अथवा रात को सोते वक्त सिर्फ एक बार दस-पन्द्रह दिन तक पीने से दोनों प्रकार के स्पोंडिलिटिस में फायदा होता है।

(3) अम्लपित्त और कब्ज की शिकायत वालों को रात को सोते वक्त एक चम्मच त्रिफला चूर्ण, एक चम्मच यष्टिमधु यानी कि मूलैठिका चूर्ण मिलाकर जल के साथ लेना चाहिए।

(4) शारीरिक कमजोरी और जातिय कमजोरी (सेक्स विकनेस) में अश्वगंधा और गोक्षुर चूर्ण समभाग में लेकर दिन में दो बार एक चम्मच गोघृत मिलाकर गाय के दूध के साथ मिश्री डालकर पीना चाहिए। एक से दो चम्मच चूर्ण लेना चाहिए।

इसके उपरांत कम्प्यूटर के सामने बैठने की कुर्सी नरम गद्दी वाली होनी चाहिए। हर आधे-पौन घंटे पर आंखें बंद करके आंखों पर दोनों हथेलियां परस्पर रगड़ कर हथेलियों से सेंक करना चाहिए। इससे आंखों की थकान मिटती है।

सुबह-शाम मुँह में शीतल जल भरकर कुल्ले करते-करते शीतल जल का छिटकाव आंखों में धीरे से करना चाहिए।

दोनों समय भोजन के बाद पांच से दस मिनट वज्रासन में बैठना चाहिए। योग गुरु, स्वामी रामदेवजी के बताये हुए भ्रस्तिका, कपालभाति, अनुलोम-विलोम, भ्रामरि आदि प्राणायाम ब्राह्ममुहूर्त में सुबह उठकर पद्मासन, सिद्धासन या वज्रासन में बैठकर करने से जो रोग हुए हैं, वो तो मिटेंगे ही। इतना ही नहीं नये रोग होंगे ही नहीं।

इसमें बताये हुए सभी प्रयोग निर्दोष व सफल हैं। फिर भी; आप चाहें तो विशेषज्ञ आयुर्वेद चिकित्सक से सलाह ले सकते हैं और मुझे भी लिख सकते हैं या फोन कर सकते हैं। ❑

* कॉर्नर बी-7, मीरा सोसायटी, हरणी मेन रोड, बड़ोदरा-390022 (गुजरात), फोन : 0265-2482062

तीसरी बरसी : 26 सितंबर : पुण्य स्मरण

और ज्यादा समीचीन हो रहे हैं प्रो. बनवारीलाल शर्मा

❑ डॉ. कृष्णस्वरूप आनन्दी

2-3 दिसंबर, 1984 की रात भोपाल में यूनियन कार्बाइड के कारखाने से निकली मिथाइल आइसो-महादैत्य द्वारा देश पर किया गया सबसे बड़ा रासायनिक हमला था। भोपाल गैस कांड के बाद यह बात परत-दर-परत उजागर होती गयी कि कॉरपोरेट-महाबली देश की राजनैतिक सम्प्रभुता, आर्थिक स्वतंत्रता एवं न्यायपालिका के साथ क्रूर मजाक तथा जनगण की जिन्दगी व सेहत के साथ जघन्य अपराध करते हैं।

देशभर के समाजकर्मियों, जन संगठनों और आम लोगों ने भोपाल कांड के खिलाफ अपने-अपने ढंग से आवाज बुलंद की थी। उनमें डॉ. शर्मा का स्वर सबसे ज्यादा मूलगामी, सदिश एवं सारगर्भित था। यूनियन कार्बाइड के कारनामे ने उन्हें इस बात की साँची प्रतीति करा दी थी कि हमारी आजादी यानी स्वराज-संरचना की राह में देशी-विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सबसे बड़ी बाधा हैं।

भोपाल गैस कांड के बाद प्रो. शर्मा उस मुहिम का प्रमुख हिस्सा बन गये जो इस बात की लड़ाई लड़ रही थी कि बिना देर किये न केवल गैस पीड़ित जनों का यथेष्ट पुनर्वास हो, उन्हें समुचित मुआवजे मिलें, उनकी सही चिकित्सा व भलीभांति तीमारदारी हो और गैस के हमले में मारे गये लोगों के परिजनों को ठोस सहारा दिया जाय; बल्कि अमरीकी कॉरपोरेट-समूह यूनियन कार्बाइड एवं उसकी भोपाल स्थित सब्सिडियरी के खिलाफ जघन्यतम अपराध एवं सामूहिक नरसंहार के मुकदमें भी चलाये जायं और उनके प्रवर्तकों एवं आकाओं को ऐसी कड़ी से कड़ी सजा सुनिश्चित की जाय जो इतिहास में दर्ज हो और मिसाल बने। डॉ. शर्मा यहीं नहीं रुके। उन्होंने यूनियन कार्बाइड के खिलाफ संघर्ष को और अधिक विस्तार एवं आयाम दिये। उन्होंने विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर करने के उद्देश्य से आजादी बाचाओ आंदोलन का उद्घोष किया।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खिलाफ आंदोलन की शुरुआत इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) से हुई। डॉ. शर्मा के नेतृत्व में स्थानीय विद्यार्थियों, युवजनों, शिक्षकों, बुद्धिजीवियों और आम लोगों ने शहर के मोहल्लों में घर-घर जाकर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बने सामान इकट्ठे किये। उन सामानों को सिविल लाइन्स के मुख्य चौराहे पर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आदमकद मूर्ति के सामने होलिकादहन के लिए जमा किया गया। समर्पित कार्यकर्ताओं और आम लोगों के सम्मुख विशेष रूप से आमंत्रित समाजकर्मी व संघर्षनायक श्री अब्दुल जब्बार भाई (संयोजक, भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन) ने उस ढेर में आग लगायी। जुलाई 1989 के उस कार्यक्रम में डॉ. शर्मा के साथ उत्साहित भीड़ ने ''बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ! भारत छोड़ो। भारत छोड़ो, भारत छोड़ो' और 'बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खिलाफ लड़ाई। आजादी की नयी लड़ाई।।'' के नारे भी लगाये।

आजादी बचाओ आंदोलन के प्रणेता और नायक डॉ. बनवारीलाल शर्मा ने पिछली सदी के अस्सी के दशक में जिस विचार, लक्ष्य और संघर्ष का चक्र प्रवर्तन किया था, आज उसे चलायमान रखने एवं त्वरित करने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं। कॉरपोरेट-नीत बहुराष्ट्रीय औपनिवेशिक संजाल के एक तंतु के रूप में सरकारें काम कर रही हैं। सच कहा जाय तो समाज, राजकाज, अर्थ, वित्त, वाणिज्य, व्यवसाय, व्यापार, कारोबार, खेत-खलिहान, प्राकृतिक संसाधन, शिक्षण, मनोरंजन, स्वास्थ्य, व्यंजन, शरीर, मानस, आत्मा इन सब पर कॉरपोरेट्स हावी होते जा रहे हैं। कहां तक कहा जाय? जीवन-रचयिता पंचमहाभूत—पृथ्वी, जल, आकाश, वायुमंडल, अग्निदेव (तेजस् यानी ऊर्जा)—कॉरपोरेट्स की गिरफ्त में आते जा रहे हैं। इतना ही नहीं, अन्य ग्रह भी उनके निशाने पर हैं।

डॉ. शर्मा ने सपना देखा था कि स्वराज की दिशा में पहला कदम होगा कि विश्व कॉरपोरेट-मुक्त बने। उनकी दृष्टि में आज जो दानवी विश्वव्यवस्था चल रही है उसके नाभिस्थल में कॉरपोरेट्स डेरा जमाये हुए हैं, जिन्होंने ऐसा तंतुजाल बुन रखा है, जिसमें हमारी आजादी, अस्मिता, आजीविका, प्रकृति, जैव विविधता, जिन्दगी और सोच कैद है। कॉरपोरेट्स ने जो सबसे बड़ा नुकसान किया है वह यह है कि उन्होंने हमारी दृष्टि, चेतना या मति को भ्रष्ट किया है। सहस्राब्दियों से गुजरते हुए हमने जो शाश्वत जीवन-मूल्य या उदात्त मनोभाव विकसित किये थे, उनमें तेजी से क्षरण हो रहा है।

डॉ. शर्मा युवाशक्ति को बहुत महत्त्व देते थे और उससे उन्हें बड़ी उम्मीदें थीं। वे मानते थे कि आमूलचूल बदलाव के नायक युवजन होंगे। बाकी समाज उनकी अगुवाई में संघर्षरत होगा। कॉरपोरेट-नीत बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद के स्थान पर जनगण-नीत सामुदायिक स्वराज की स्थापना शुद्ध उपायों से होगी। जन-जन की सहभागिता व सहकारिता पर टिकी तथा अहिंसक साधनों का आश्रय ले करके गलत व्यवस्था से पूर्ण असहयोग व अन्याय का संगठित प्रतिकार करने वाली 'सिविल नाफरमानी' (सामूहिक सविनय अवज्ञा) हमारी सबसे बड़ी युक्ति, रणनीति और ताकत है। लगता है कि डॉ. शर्मा आज भी आवाहन कर रहे हैं कि युवाशक्ति आगे आये और विश्वव्यवस्था के मर्मस्थल पर संधान करे, जिससे कॉरपोरेट-सत्ता का सफाया हो और लोकशक्ति का स्फुरण हो। *(पीएनएन)* ❑

गतिविधियां एवं समाचार

उत्तर प्रदेश सर्वोदय सम्मेलन सम्पन्न

उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल का सम्मेलन 9 अगस्त, 2015 को भगवान श्रीराम की तपोस्थली चित्रकूट स्थित गायत्री शक्ति पीठ परिसर में प्रदेश अध्यक्ष डॉ. मधुसूदन उपाध्याय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में 17 जनपदों से 51 लोकसेवक, सर्वोदय मित्र एवं साथी भाग लिये।

सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए डॉ. मधुसूदन उपाध्याय ने सम्मेलन के एजेण्डे का विषय प्रवेश कराया और बताया कि सबसे पहले इस सम्मेलन में *'देश की वर्तमान चुनौतियां और हमारी भूमिका'* विषय पर हम सभी चर्चा करेंगे। फिर, विभिन्न क्षेत्रों में किये गये कार्यों एवं भविष्य की कार्ययोजना की घोषणा सहभागियों द्वारा किया जायेगा। तत्पश्चात् प्रदेशीय अध्यक्ष का चुनाव होगा।

सम्मेलन के मुख्य अतिथि सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री विजय भाई रहे। सर्व सेवा संघ की ओर से प्रदेश अध्यक्ष के चुनाव के पर्यवेक्षक का दायित्व भी आप निभा रहे थे।

सम्मेलन का उद्घाटन चित्रकूट गायत्री शक्तिपीठ के अध्यक्ष डॉ. रामनारायण तिवारी ने किया। चित्रकूट सर्वोदय सेवा आश्रम के श्री अभिमन्यु भाई ने कहा कि हमें स्थानीय लोगों की समस्याओं से जुड़ना व जूझना चाहिए ताकि लोकशक्ति विकसित हो सके।

उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के पूर्व अध्यक्ष श्री रवीन्द्र सिंह चौहान ने स्वतंत्रता पूर्व व बाद के कई कानूनों की समीक्षा करते हुए कहा कि जनकल्याण की आवश्यकताओं पर हमें ध्यान देने की जरूरत है। फर्रुखाबाद के श्री लक्ष्मण सिंह 'एडवोकेट' ने अपनी नौ सूत्रीय पत्रक प्रस्तुत कर, बढ़ती जनसंख्या, स्वच्छता, भूमि अधिग्रहण आदि ज्वलंत मुद्दों का जिक्र किया तथा देर से मिलता न्याय को भ्रष्टाचार का जड़ बताया।

सम्मेलन में बरेली सर्वोदय मंडल के श्री भगवान सिंह दीक्षित, झांसी के श्री किशोरी भाई, उन्नाव के श्री रामशंकर भाई, वाराणसी की श्रीमती जागृति राही, जौनपुर के डॉ. आनन्द प्रकाश तिवारी, श्री राधेश्याम, चित्रकूट की डॉ. कुसुम सिंह, बांदा के श्री शिवविजय सिंह ने भी अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये।

मुख्य अतिथि श्री विजय भाई ने सम्मेलन को संबोधित करते हुए सभी से आवाहन किया कि जो वक्ता अपने विचार व्यक्त किये हैं, वे उसे सर्वोदय लाइन के प्रकाश में पुष्ट करें तथा अपने-अपने क्षेत्रों में उस पर अमल भी। सभी एक-दूसरे से संवाद कायम रखें ताकि ऐसा महसूस होता रहे कि पूरा प्रदेश एक टीम के रूप में कार्य कर रहा है। असल में देश की चुनौतियों से हम परिचित हैं, उसमें अपनी भूमिका भी हम तय कर लेते हैं लेकिन कार्यान्वयन स्तर पर हम पिछड़ जाते हैं। इसपर हमें ध्यान रखना चाहिए।

दूसरे सत्र में प्रदेश अध्यक्ष की चुनाव प्रक्रिया प्रारम्भ करते हुए चुनाव पर्यवेक्षक श्री विजय भाई ने सम्मेलन के साथियों से एक चुनाव अधिकारी का नाम मांगा। श्री रवीन्द्र सिंह चौहान व श्रीमती पुतुल कुमारी का नाम आया। श्री रवीन्द्र भाई अपना नाम वापस लेते हुए श्रीमती पुतुल के नाम का समर्थन किया। चुनाव अधिकारी द्वारा उपस्थित सभी लोकसेवकों/सर्वोदय मित्रों से प्रदेश अध्यक्ष के लिए नाम मांगा गया। श्री रवीन्द्र भाई ने पूर्व अध्यक्ष डॉ. मधुसूदन उपध्याय के पक्ष में अपने तर्क रखते हुए उनका नाम प्रस्तावित किया। इस प्रस्ताव का बारी-बारी से सभी क्षेत्रों/जिलों से आये प्रतिनिधियों ने समर्थन किया। केन्द्रीय पर्यवेक्षक द्वारा चुनाव को नियमानुसार सही घोषित किया गया और सर्वसम्मति से डॉ. मधुसूदन उपाध्याय को दोबारा उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल का अध्यक्ष चुना गया।

अंत में प्रदेश अध्यक्ष डॉ. मधुसूदन उपाध्याय ने उपस्थित सभी लोकसेवकों व सर्वोदय मित्रों का पूर्ववत समर्थन व विश्वास जताने पर धन्यवाद दिया और सभी को एक साथ लेकर कार्य करने की अपनी कटिबद्धता जतायी।

–डॉ. मधुसूदन उपाध्याय

मांग रहा है हिन्दुस्तान–सबको शिक्षा एक समान

इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा जन प्रतिनिधियों, सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़ाने को अनिवार्य बनाये जाने का फैसला क्रांतिकारी एवं ऐतिहासिक है।

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही तथा राष्ट्रीय प्रवक्ता श्री भवानीशंकर कुसम ने एक वक्तव्य में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इस फैसले को शिक्षा के क्षेत्र में चली आ रही असमानता की नीति को समाप्त करने तथा समाज-परिवर्तन की दिशा में एक बहुत बड़ा कदम बताया है। उन्होंने सभी राज्य सरकारों से अनुरोध किया है कि वे इसे अपने-अपने राज्यों में भी अविलम्ब लागू करें, ताकि सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू हो सके।

वक्तव्य में आगे कहा गया है कि *'मांग रहा है हिन्दुस्तान–सबको शिक्षा एक समान'* के नारे के साथ देश के गांधीजन समान शिक्षा-नीति के लिए लम्बे समय से संघर्षरत हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय का यह फैसला गैर-बराबरी पर आधारित शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध तथा सामाजिक एकता की दिशा में एक सशक्त कदम है। इसके साथ ही हम सभी प्राइवेट स्कूलों को भी बंद करने की मांग करते हैं।

—मारोती गावंडे, कार्या. मंत्री, ससेसं.

23 सितंबर : 'दिनकर'-जयंती

अतीत के द्वार पर

❑ रामधारी सिंह 'दिनकर'

'जय हो', खोलो अजिर-द्वार
मेरे अतीत ओ अभिमानी
बाहर खड़ी लिये नीराजन
कब से भावों की रानी!
बहुत बार भग्नावशेषपर
अक्षर-फूल बिखेर चुकी;
खंडहर में आरती जलाकर
रो-रो तुमको टेर चुकी।
वर्तमान का आज निमंत्रण,
देह धरो, आगे आओ;
ग्रहण करो आकार देवता!
यह पूजा-प्रसाद पाओ।
शिला नहीं, चैतन्य मूर्ति पर
तिलक लगाने मैं आयी;
वर्तमान की समर-दूतिका,
तुम्हें जगाने मैं आयी।
वह दो निज अस्तमित विभा से,
तम का हृदय विदीर्ण करे;
होकर उदित पुनः वसुधा पर
स्वर्ण-मरीचि प्रकीर्ण करे।
अंकित है इतिहास पत्थरों
पर जिनके अभियानोंका
चरण-चरण पर चिह्नयहां
मिलता जिनके बलिदानों का;
गुंजित जिनके विजय-नाद से
हवा आज भी बोल रही;
जिनके पदाघात से कम्पित
धरा अभी तक डोल रही।
कह दो उनसे जगा, कि उनकी
ध्वजा धूल में सोतीहै;
सिंहासन है शून्य, सिद्धि
उनकी विधवा-सी रोती है।
रथ है रिक्त, करच्युत धनु है,
छिन्न मुकुट शोभाशाली,
खंडहर में क्या धरा, पड़े,
करते वे जिसकी रखवाली?
जीवित है इतिहास किसी-विधि
वीर मगध बलशालीका,
केवल नाम शेष है उनके
नालन्दा, वैशाली का।
हिमगह्वर में किसी सिंह का
आज मन्द्र हुंकार नहीं,
सीमा पर बजने वाले घौंसों
की अब धुंधकार नहीं!
बुझी शौर्य की शिखा, हाय,
वह गौरव-ज्योति मलीनहुई,
कह दो उनसे जगा, कि उनकी
वसुधा वीर-विहीन हुई।
वसुधा धर्म का दीप, भुवन में
छाया तिमिर अहंकारी;
हमीं नहीं खोजते, खोजती
उसे आज दुनिया सारी।
वह प्रदीप, जिसकी लौ रण में
पत्थर को पिघलाती है;
लाल कीच के कमल, विजय को
जो पद से ठुकरातीहै।
आज कठिन परमेघ! सभ्यता
ने थे क्या विषधर पाले!
लाल कीच ही नहीं, रुधिर के
दौड़ रहे हैं नद-नाले।
अब भी कभी लहू में डूबी
विजय विहँसती आयेगी,
किस अशोक की आँख किन्तु,
रो कर उसको नहलायेगी?
कहाँ अर्द्ध-नारीश वीर वे
अनल और मधु के मिश्रण?
जिनमें नर का तेज प्रबल था,
भीतर था नारी का मन?
एक नयन संजीवन जिनका,
एक नयन था हालाहल,
जितना कठिन खड्ग था कर में,
उतना ही अन्तर कोमल।
स्थूल देह की विजय आज,
है जग का सफल बहिर्जीवन;
क्षीण किन्तु, आलोक प्राण का,
क्षीण किन्तु, मानव का मन।
अर्चा सकल बुद्धि ने पायी,
हृदय मनुज का भूखा है;
बढ़ी सभ्यता बहुत, किन्तु,
अन्तःसर अब तक सूखा है।
यंत्र-रचित नर के पुतले का
बढ़ा ज्ञान दिन-दिन दूना;
एक फूल के बिना किन्तु, है–
हृदय-देश उसका सूना।
संहारों में अचल खड़ा है
धीर, वीर मानव ज्ञानी
सूखा अंतःसलिल, आँख में
आये क्या उसके पानी?
सब कुछ मिला नये मानव को,
एक न मिला हृदय कातर;
जिसे तोड़ दे अनायास ही
करुणा की हलकी ठोकर।
'जय हो', यंत्र पुरुष को दर्पण
एक फूटने वाला दो;
हदृयहीन के लिए ठेस पर
हृदय टूटने वाला दो।
दो विषाद, निर्लज्ज मनुज यह
ग्लानिमग्न होना सीखे;
विजय-मुकुट रुधिराक्त पहनकर
हँसे नहीं, रोना सीखे।
दावानल-सा जलारहा
नर को अपना ही बुद्धि-अनल;
भरो हृदय का शून्य सरोवर,
दो शीतल करुणा का जल।
जग में भीषण अंधकार है,
जगो, तिमिर-नाशक, जागो,
जगो मंत्र-द्रष्टा, जगती के
गौरव, गुरु, शासक जागो।
गरिमा, ज्ञान, तेज, तप कितने
सम्बल हाय, गये खोये;
साक्षी है इतिहास, वीर, तुम
कितना बल लेकर सोये।
'जय हो' खोलो द्वार, अमृत दो,
हे जग के पहले दानी!
यह कोलाहल शमित करेगी
किसी बुद्ध की ही बानी। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1450